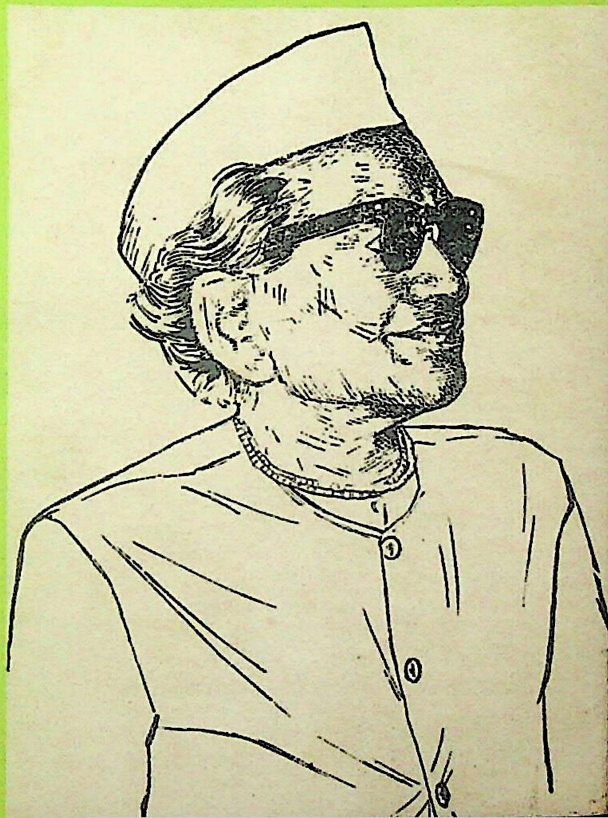



# सियारामशरण गुप्त

प्रेमशंकर



भारतीय
साहित्य के
निर्माता

सियारामशरण गुप्त

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ–रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं। इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ईसवी
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

# सियारामशरण गुप्त

प्रेमशंकर




साहित्य अकादेमी

**Siyaramsharan Gupta : A monograph in Hindi by Prem Shankar on the modern Hindi author. Sahitya Akademi, New Delhi (1993), Rs.15.**



प्रथम संस्करण : १९९३

**साहित्य अकादेमी**

**प्रधान कार्यालय**

रवीन्द्र भवन, ३५, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली ११० ००१

विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली ११० ००१

**क्षेत्रीय कार्यालय**

जीवनतारा बिल्डिंग, चौथी मंजिल, २३ ए/४४ एक्स,
डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता ७०० ०५३

३०४-३०५, अन्ना सलाई, तेनामपेट, मद्रास ६०० ०१८

१७२, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई ४०० ०१४

ए. डी. ए. रंगमन्दिर, १०९, जे. सी. मार्ग, बंगलौर ५६० ००२

**मूल्य** : पन्द्रह रुपये

ISBN 81-7201-442-2

**टाइपसेटिंग** : राजधानी कम्प्यूट्रोनिक्स प्रा. लि., दिल्ली ११० ००७

**मुद्रक** : सुपर प्रिंटर्स, दिल्ली ११० ०५१

कृष्णायनकार
पं. द्वारकाप्रसाद मिश्र
की स्मृति को सप्रणाम

# विषय-सूची

# जीवन-रेखाएँ

कवि-रूप में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त इतने लोकप्रिय हुए कि उनके प्रतिभावान अनुज – सियारामशरण गुप्त की ओर लोगों का ध्यान थोड़ी देर से गया। पर स्वयं मैथिलीशरणजी ने अपने अनुज की प्रतिभा स्वीकारते हुए लिखा है : "अवस्था में वे मुझसे दस वर्ष छोटे हैं। और विद्या के क्षेत्र में उतने ही बड़े।" मैथिलीशरण और सियारामशरण अरसे तक हिन्दी रचना में 'युगल-बंधु' के रूप में स्वीकृत रहे हैं और दोनों में गहरे भावात्मक सम्बन्ध थे। सियारामशरणजी ने अपने यशस्वी अग्रज को बहुत आदर दिया और इसमें सन्देह नहीं कि उनके व्यक्तित्व पर मैथिलीशरण का व्यापक प्रभाव है, जिसे उन्होंने स्वीकार किया है: "प्रारम्भ में ही उन हाथों का प्रसाद पाकर मेरी रचना कुछ की कुछ हो गयी। वह प्रसाद निरन्तर मुझे प्राप्त है। उनके श्रीचरणों में मेरा नम्र प्रणाम पहुँचे, इन सब पंक्तियों की सबसे बड़ी बात यही हो।" पर धीरे-धीरे सियारामशरणजी ने अपने स्वतंत्र कवि-व्यक्तित्व का निर्माण किया।

सियारामशरण तथा अन्य गुप्त बन्धुओं का नाम बुन्देलखण्ड क्षेत्र के चिरगाँव (झाँसी) से जुड़ गया और इनकी रचनाओं पर भी क्षेत्रीय प्रभाव देखा जा सकता है। सियारामशरण के पितामह का नाम ललनजू था और पिता का सेठ रामचरणजी। यह वैश्यों का सम्पन्न सामन्ती परिवार था, पर इसे आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा, जिसका उल्लेख राष्ट्रकवि ने भी किया है – कुछ-कुछ जयशंकर प्रसाद के परिवार जैसा उत्थान-पतन। सियारामशरण का जन्म भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमा सं. १९५२ वि. तदनुसार ४ सितंबर, १८९५ ई. को हुआ और निधन चैत्र शुक्ल नवमी सं. २०१९ वि. २९ मार्च १९६३ को। आर्थिक संकट के अतिरिक्त उन्हें अपने स्वास्थ्य से भी निरन्तर संघर्ष करना पड़ा क्योंकि वे श्वास रोग से पीड़ित थे – आचार्य नरेन्द्रदेव आदि की तरह। पर इसे उनकी जिजीविषा और कर्मठता कहा जायेगा कि वे निरन्तर लेखन कार्य करते रहे और स्वतंत्रता संग्राम में भी उन्होंने भाग लिया। महात्मा गाँधी उनके आराध्य-जैसे थे।

सियारामशरणजी के यहाँ पैतृक व्यवसाय होता था – लेन-देन आदि का जिसमें उतार-चढ़ाव आना स्वाभाविक है। पर इस व्यावसायिकता के बीच जो तथ्य उल्लेखनीय है, वह है इस परिवार की उदारता और वैष्णव भक्ति में आस्था। पिताश्री रामचरण 'कनकने' के नाम से जाने जाते थे और आस-पास के क्षेत्रों में उनका मान था।

सम्पन्नता के साथ उनमें जो दानशीलता थी, उसके कारण उनकी वैष्णव वृत्ति में निरन्तर विकास होता गया। यह वैष्णव भावना – मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त – दोनों कवियों में समान रूप से देखी जा सकती है। पिताश्री विद्वानों का आदर करना जानते थे और सत्संग उन्हें प्रिय था। इसी क्रम में मुंशी अजमेरीजी मिले जो गुप्त परिवार से घनिष्ठ बने, जिन्हें लोगों ने 'परम वैष्णव' कहा, यद्यपि वे जन्म से मुसलमान थे। यह है इस परिवार की उदार धर्मनिरपेक्ष दृष्टि।

सियारामशरण को अपने परिवार से विद्या, विनय के साथ आस्था के वैष्णव संस्कार मिले जिन्हें उन्होंने अपनी रचनाओं में विकसित किया। वे केवल आठ वर्ष के थे कि पिता की आशीष-छाया चली गई जिसकी क्षति-पूर्ति अग्रज मैथिलीशरण ने की। १९०५ में कवि की माता का देहान्त हुआ। अपने निबन्ध 'बाल्यस्मृति' में सियारामशरण ने अपनी पहली कविता की प्रेरणा में परिवार से प्राप्त वैष्णव भावना की चर्चा की है। पिताश्री रामचरण जी में कविता के जो संस्कार थे, वे इन दोनों भाइयों को प्राप्त हुए, जिसे उन्होंने अभ्यास से नया विकास दिया। मैथिलीशरण, सियारामशरण नाम स्वयं परिवार की वैष्णवमार्गी भावना का परिचय देते हैं।

जीवन का बाल्यकाल कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि ये आरंभिक संस्कार, रचना और व्यक्तित्व को रूपायित करते हैं। सियारामशरण की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति की चर्चा कई विद्वानों ने की है और कवि ने इसका उपयोग अपने सर्जन में किया। इसे एक नया आयाम तब मिला जब वे महात्मा गाँधी तथा स्वतंत्रता संघर्ष के निकट सम्पर्क में आए। कवि अग्रज इस क्षेत्र में इतने सक्रिय हुए कि राष्ट्रीय भावना के प्रतिनिधि कवि हुए और उन्हें 'राष्ट्रकवि' कहा गया।

सियारामशरण की आरंभिक शिक्षा चिरगाँव की प्राथमिक शाला में हुई। पर पारिवारिक परिस्थितियों के कारण वे आगे न पढ़ सके। जो उल्लेखनीय पक्ष है वह यह कि उन्होंने अपने श्रम और अध्यवसाय से इसकी क्षति-पूर्ति की। रामचरितमानस उनका प्रिय ग्रंथ था, जिसके संस्कार उन्हें वैष्णव पिता से प्राप्त हुए थे। उन्हें संस्कृत के श्लोक कंठस्थ थे और उन्होंने अंग्रेज़ी का अभ्यास स्वयं किया। वे उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में रुचि लेते थे जिनमें प्रमुख थी 'सरस्वती' जिसमें उनकी रचनाएँ भी आयीं। आश्चर्यजनक यह कि बुन्देलखण्ड में रहकर उन्होंने बंगला भाषा का ज्ञान पुस्तकों की सहायता से प्राप्त किया और कवीन्द्र रवीन्द्र का उन पर गहरा प्रभाव है, जिस ओर मैथिलीशरणजी ने भी संकेत किया है। उन्हीं के शब्दों में: "उनके लिखने की शैली अलंकृत भाषा की दृष्टि से गुरुदेव की अनुयायिनी है और उनके भाव बापू के अनुयायी हैं।" सियारामशरण ने स्वाध्याय से जो ज्ञान प्राप्त किया, उसका उपयोग अपनी रचनाओं में किया। वे 'गीता' का अनुवाद अपनी अध्ययनशीलता के सहारे कर सके।

बात विचित्र लग सकती है, पर इसे उस समय की प्रचलित परम्परा के निर्वाह रूप में लेना चाहिए। सियारामशरण जब केवल आठ वर्ष के थे, तभी उनका विवाह हुआ। बड़ागाँव धनाढ्य श्री देवकीनन्दन कारेखिमऊ की इकलौती बेटी केशरवाई घरेलू महिला थीं पर दुर्भाग्य से १९२२ में क्षयरोग से उनका देहान्त हो गया। युवावस्था में ही अपनी पत्नी को खोकर, सियारामशरण ने न तो 'घर जमाई' बनकर ससुराल रहना स्वीकारा और न दूसरा विवाह ही किया। इससे एक ओर उनकी निर्लोभी वृत्ति तथा दूसरी ओर उनकी संकल्पी विरक्ति का परिचय मिलता है। वे चाहते तो सम्पन्न ससुराल के उत्तराधिकारी वन सकते थे, पर अनासक्त थे। कवि को कई सन्तानें हुईं पर दुर्भाग्यवश सब अकाल कवलित, फिर भी उन्होंने पुनर्विवाह से इन्कार कर दिया। वे कहा करते थे कि उनकी रचनाएँ ही सन्तान हैं।

कवि एक संवेदनशील प्राणी है, इसलिए सामान्यजन की तुलना में उसका संघर्ष कहीं अधिक जटिल/संश्लिष्ट होता है क्योंकि वह कई स्तरों पर जूझता है–बाहर-भीतर। मैथिलीशरणजी–सियारामशरणजी का संयुक्त परिवार था, एक बड़ा कुनवा जिसे उत्थान-पतन से गुजरना पड़ा–आरंभिक सामन्ती सम्पन्नता, फिर आर्थिक संकट। पर इससे उवरने का कोई तात्कालिक उपाय भी न था। सियारामशरण का स्वास्थ्य बहुत अच्छा न था और श्वास रोग ने उन्हें अंतिम समय तक कष्ट दिया। सारे प्रयत्नों के बावजूद इस पीड़ा से कवि को मुक्ति न मिल सकी। पर सियारामशरण के स्वास्थ्य की इस सीमा ने उन्हें अन्तर्मुखता दी, जिससे वे रचनारत रह सके। इसका अर्थ यह नहीं कि वे 'अन्तर्गुहावासी' हो गए। उन्होंने अपने अध्यवसाय, जीवनानुभव से जो कुछ प्राप्त किया, उसे अपनी रचनाओं का कथन बनाया। शारीरिक कष्ट के कारण उनकी यात्राएँ सीमित थीं, इसलिए वे अध्ययन और लेखन को अधिक समय दे सके। स्वतंत्रता-संग्राम और महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व ने उन्हें रचनात्मक ऊर्जा दी।

रचना की आरंभिक प्रेरणा के लिए सियारामशरण ने पारिवारिक परिवेश, विशेषतया कवि अग्रज मैथिलीशरण गुप्त का उल्लेख किया है। अपनी पहली कविता के विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है कि सरस्वती-गणेश की वन्दना में छः पंक्तियाँ रची गईं - एक दोहा और चार पंक्तियाँ। इसे राष्ट्रकवि ने सुधारा था (झूठ-सच)। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन, विशेषतया महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व ने सियारामशरण की रचनाशीलता को नया आधार प्रदान किया। इससे उनकी वैष्णव भावना को नई दिशाएँ मिलीं।

सभी ने इसे स्वीकारा है कि सियारामशरण गुप्त हिन्दी साहित्य में गाँधीवाद के सर्वोपरि प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। दोनों कवि-बंधु – मैथिलीशरण-सियारामशरण गाँधीवाद से प्रभावित हैं, पर उनकी संवेदन-दृष्टि में किंचित अन्तर है। राष्ट्रकवि 'भारत-भारती' जैसे काव्य की रचना करते हैं – भारत की स्वतंत्रता का उद्घोष करते

हुए: भगवान भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती अथवा जग जायं तेरी नोंक से सोये हुए हों भाव जो। पर सियारामशरण की अधिक रुचि गाँधीवाद के दार्शनिक पक्ष में है। डा. नगेन्द्र ने तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए लिखा है: "सियाराम जी गाँधीवाद के तात्विक रूप को, जो मूलत: संत दर्शन का ही विकास है, सहज ग्रहण कर सके। परन्तु मैथिलीशरण के भक्ति-संस्कार इतने प्रबल और गहन थे कि उनके ऊपर गाँधी जी के उन्हीं सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ सका, जिनके साथ उनकी संगति बैठती थी।"

विद्वानों ने स्वीकार किया है कि १९२० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में महात्मा गाँधी के प्रवेश ने स्वतंत्रता आन्दोलन को एक नयी दिशा दी; उसे सामान्यजन से सम्बद्ध किया (डा. श्रीमती शोमाशंकर की पुस्तक: *आधुनिक भारतीय समाजवादी चिन्तन*)। गुप्त-परिवार अपने आचार-विचार में गाँधी के व्यक्तित्व से प्रभावित था। पर सियारामशरणजी का महात्मा गाँधी से प्रथम सम्पर्क १९२९ में हुआ जब वे चिरगाँव आए। सियारामशरणजी गाँधीजी के लेखन और व्यक्तित्व से परिचित थे, पर निकट से उनका दर्शन प्राप्त कर उन्हें एक नयी प्रेरणा मिली। इसके अनन्तर वे गाँधी जी के वर्धा आश्रम गए जहाँ उन्होंने महात्माजी की जीवनचर्या को देखा। कवि का श्रद्धा-भाव और प्रगाढ़ हुआ जिसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अपनी रचनाओं में की है। 'बापू' काव्य की पंक्तियाँ हैं: बहुत युगों के बाद, पूर्व-पुण्यस्थल की/आशा, यह/झलकी देखो तो, सुनो तो धैर्य धरके/किसके उदात्त उच्च स्वर से/निर्भय अकुंठित, सदा स्वतंत्र/गूंजा कहाँ मोहन-मधुर मंत्र/ऊर्जस्वित, सत्य के अहिंसा अमृत से/मुक्त छल-छद्म के अनृत से बोला यह कोई मंत्रदृष्टा ऋषि नूतन में/प्राण के पवित्र नवोद्बोधन में।' सियारामशरणजी ने बापू के जन्मदिन पर 'बापू' कृति स्वयं महात्माजी को भेंट की थी।

सियारामशरण के कृतित्व में गाँधीवादी प्रेरणा की स्वीकारते हुए भी यह कहना होगा कि कवि ने सत्य-अहिंसा-करुणा की अवधारणाओं को काव्य में अन्तर्भुक्त करने का प्रयत्न किया। जीवन-भर उन्होंने खादी का उपयोग किया और सादा-सरल जीवन में उनकी आस्था अडिग थी। मैथिलीशरणजी ने लिखा है कि सियारामशरण ने कई बार महात्मा गाँधी के दर्शन किए, वे उनके मानवतावादी दर्शन से भी प्रभावित थे पर उनकी हिन्दी-नीति से सहमत न थे। वास्तव में गाँधी का सर्वप्रभावी व्यक्तित्व सियारामशरण के वैष्णवमार्गी चिन्तन का समीपी था और गाँधीवादी विचारधारा को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति देते हुए उन्होंने अपनी वैष्णव भावना को नयी सामाजिकता से सम्पन्न किया। 'नोआखाली' में बापू की प्रति उद्दिष्ट 'निशान्त' कविता में सियारामशरणजी का कथन है: 'कब कहाँ रुक रहा सका प्रभात तिमिर से/जागी यह अन्तर्ज्योति अभय में फिर से।' ऐसा प्रतीत होता है कि कि गाँधी के राजनैतिक कार्य-कलापों की अपेक्षा उनकी करुणाभरी मानवीय दृष्टि ने कवि को

अधिक प्रेरित किया। साम्प्रदायिक सौमनस्य के लिए शहीद होने वाले गणेशशकर विद्यार्थी को नायकत्व देने वाली कविता का शीर्षक - 'आत्मोसर्ग' की समापन पंक्तियाँ हैं: निखिल विश्व में परिव्याप्त हो/मति यह सर्वहिता तेरी/घर-घर ज्ञान-प्रदीप जला दे/मरणोदीप्त चिता तेरी।

सियारामशरण की औपचारिक शिक्षा बहुत समय तक न हो सकी। गाँव में पाठशाला की प्राथमिक शिक्षा के अनन्तर ही कई कठिनाइयाँ आईं। उस समय चिरगाँव में पूर्व माध्यमिक शिक्षा की भी व्यवस्था न थी और वे कई कारणों से निकट ही झांसी में उचित प्रवंध न कर सकते थे। जिसे औपचारिक विद्यालय शिक्षा व्यवस्था कहा जाता है, उससे सियारामशरणजी अपने अग्रज के समान वंचित ही रहे। पर उनमें कहीं संकल्प था और उन्होंने इस अभाव की पूर्ति अपने अध्यवसाय से की। कहा जा चुका है कि रामचरितमानस कवि का प्रिय ग्रंथ था जिसका एक कारण उसमें स्वयं उनके नाम की उपस्थिति हो सकता है, जिसका उल्लेख कुछ व्यक्तियों ने किया है: 'सियाराममय सब जग जानी/करहुं प्रनाम जोरि जुग पानी आदि। परिवार के वैष्णव संस्कारों के प्रभाव में उन्हें संस्कृत के कुछ श्लोक कंठस्थ थे, जैसे रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड का आरंभ का श्लोक

*नीलाम्बुजश्यामलकोमलांगं सीता समारोपितवामभागम्। पाणौ महासायकचारु चापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्।*

इस ओर मैथिलीशरणजी ने भी संकेत किया है। संभवतः अपनी स्मरणशक्ति के सहारे सियारामशरणजी ने अध्यवसाय से प्राप्त ज्ञान का उपयोग अपनी रचनाओं में किया। हिन्दी के साथ संस्कृत, बांगला और अंग्रेज़ी भाषा सीखकर उन्होंने अपने अध्ययन क्षेत्र का विस्तार किया। पुस्तकों-पत्रिकाओं में उनकी सच्ची रुचि थी और वे उनसे निरन्तर अपने ज्ञान की वृद्धि करते थे। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ को पढ़ने-समझने के लिए उन्होंने बांगला भाषा सीखी और कुछ का विचार है कि उनकी कतिपय रचनाओं पर महाकवि की छाया है। इतिहास-परम्परा से जोड़कर स्वयं को समृद्ध करना किसी भी रचनाकार का ईमानदार प्रयत्न होता है। उन्होंने 'गीता संवाद' शीर्षक से गीता का समश्लोकी अनुवाद किया जिसकी 'निवेदन' भूमिका में महात्मा गाँधी की प्रेरणा स्वीकार की गई है।

सियारामशरणजी के सन्दर्भ में जब अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का वात की जाती है तब उसका यह अर्थ नहीं कि आत्मबंदी थे। वास्तव में गाँधी जैसे कर्मयोगी से प्रेरणा ग्रहण करने वाला व्यक्ति समाज की प्रवाहमान धार से स्वयं को काटने की भूल नहीं कर सकता। वे खुले मन से समय के घटनाचक्र को देखते सुनते थे और अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करते थे। पर अन्तर्मुखता उन्हें पर्याप्त समय तक स्वयं से संवाद करने पर विवश करती थी, जिससे उनके संवेदन-संसार में कई बार आत्मालाप जैसी

स्थिति भी दिखाई देती है। इस प्रवृत्ति के निर्माण में उनके स्वास्थ्य की भी भूमिका थी। कवयित्री महादेवीजी ने उनके विषय में लिखा है: 'ग्रामीण भारत अपनी शताब्दियों पुरानी संस्कृति की धरोहर लेकर जैसे उनमें मूर्तिमान हो उठा हो। घुटनों से कुछ नीचे तक पहुँचने वाली धोती और मिर्जई।' पुस्तकों से घिरे सियारामशरण की स्थिति पर उनकी टिप्पणी है: "कितने ही हर्ष-विषाद के क्षण आते-जाते हैं, कितने ही एकान्त-कोलाहल बनते-मिटते हैं और कितने ही तर्क और विश्वास के संगम होते रहते हैं।" सियारामशरण भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

एक सीधा-सादा जीवन जीते हुए सियारामशरण रचना की राह पर चले तो किसी व्यवसाय-बुद्धि से नहीं क्योंकि उस समय इसका व्यापार भी विकसित न हुआ था। इने-गिने प्रकाशक और कुछ पत्रिकाएं इतना ही लेखक के लिए सुलभ था। संभवत: सियारामशरणजी के लिए रचना एक आन्तरिक विवशता थी जिसके माध्यम से वे अपने भावों-विचारों को व्यक्त करना चाहते थे। आश्चर्यजनक यह कि श्वासरोग से संघर्ष के लिए भी उन्होंने शब्द का मुक्तिमार्ग तलाशा था। शारीरिक व्यथा ने उन्हें किसी हीन-भावना से ग्रस्त नहीं किया। इसके विपरीत वे विनम्र, निश्छल साधु पुरुष थे, करुणासम्पन्न। सियारामशरणजी के समकालीनों ने उनके शील-स्वभाव की सराहना की है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उन्हें 'भैया' सम्बोधित करते हुए लिखा है: 'उनका व्यक्तित्व स्वयं किसी मनोहर काव्य से कम आकर्षक नहीं था। अत्यन्त सरल सहज स्वभाव और अत्यन्त मर्मभेदिनी तीक्ष्ण दृष्टि—प्रथम दर्शन में ये दो बातें ही दर्शक पर अपना प्रभाव डालती हैं। उनके समूचे व्यक्तित्व में कहीं बनावट या कृत्रिमता नहीं है। सहज-सारल्य की तो वे प्रत्यक्ष मूर्ति हैं।' जीवन और रचना में संयोजन सूत्र से ही प्रतिभाएं अग्रसर होती हैं।

मैथिलीशरणजी ने रचना के साथ अपना जीवन सक्रिय राजनीति को भी दिया—स्वतंत्रता संग्राम में कारावास गए और बाद में राज्यसभा के सदस्य मनोनीत हुए। पर सियारामशरणजी ने अग्रज की छाया बनकर रहने में ही सुख माना। वे अपने अग्रज को पिता-तुल्य आदर देते थे और राम-लक्ष्मण जैसे युगल-बंधु विरल। संकोची स्वभाव के सियारामशरणजी में अद्भुत सहनशीलता थी और वे अपना कष्ट स्वयं हँसते-हँसते झेलते थे, दूसरों पर भार डालना उचित नहीं समझते थे। यह सहिष्णुता उनकी मानवीयता का एक उल्लेखनीय पक्ष है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि सियारामशरणजी सब कुछ सह-पी जाने के अभ्यस्त थे। गाँधीवाद को उन्होंने वैचारिक और भावात्मक स्तर पर स्वीकारा था। ऐसी स्थिति में राष्ट्र के प्रति उनका सम्मान-भाव प्रबल था और वे देश का अनादर सहन नहीं कर सकते थे। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उनकी ऐसी समर्पित निष्ठा कि अपने वन्दनीय महात्मा गाँधी से अपनी सहमति व्यक्त करने में भी उन्हें कोई दुराव न था। विनय के साथ सात्विक स्वाभिमान

गाँधीवाद की देन है, इसमें सन्देह नहीं। इसके कई उदाहरण विद्वानों ने प्रस्तुत किए हैं। यह भी एक संयोग कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी सबके 'बापू' के नाम से विख्यात हैं और कुछ साहित्यिक लोग सहज आदर-भाव से सियारामशरणजी के लिए भी कभी-कभी इस सम्बोधन का उपयोग करते थे।

सियारामशरण की जीवन रेखाएं सरल हैं और किसी बड़े बाहरी संघर्ष में वे नहीं उलझते। पारिवारिक संस्कारों से जो कुछ प्राप्त किया था, उसे अग्रज मैथिलीशरण की प्रेरणा से विकास दिया और गाँधीवाद के सम्पर्क से उसमें वैचारिक तत्वों का प्रवेश कराया जिससे उनकी रचना पुष्ट हुई। जहाँ तक दोनों भ्राताओं के सम्बन्धों का प्रश्न है, महादेवीजी के विचार प्रामाणिक हैं: 'भाई' सियारामजी ने अपने अग्रज (मैथिलीशरण गुप्त) को सम्पूर्ण निष्ठा के साथ स्वीकार किया, पर उसके अन्तराल के आकाश पाने का ऐसा रंध्र निकाल लिया, जिससे प्रत्येक प्रभात की किरण उन्हें नवीन कोष से स्पर्श करती है और उनके विचार, साहित्य और साधना में कहीं अनुकरण नहीं है। कभी-कभी तो अतिपरिचित और अतिसाधारण वस्तुओं, व्यक्तियों तथा घटनाओं को वे ऐसे दृष्टि बिन्दु से देकर उपस्थित करते हैं कि सुनने वाला विस्मित हो जाता है। रचना में सियारामजी ने अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण किया। अपनी रचना-यात्रा का आरंभ उन्होंने अग्रज की छाया में अवश्य किया, पर क्रमशः वे नयी पथ-रेखा का संधान करने में सफल हुए। इससे सियारामशरणजी के रचना-व्यक्तित्व की क्षमता और ऊर्जा का परिचय मिलता है।

हिन्दी में सियारामशरणजी की अपनी अलग पहचान बनी, वह भी राष्ट्रकवि मैथिलीशरण की सामाजिक स्वीकृति के बीच, यह एक उल्लेखनीय तथ्य है। विशेषतया इस दृष्टि से कि इन स्थितियों में स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण सरल नहीं होता। सियारामशरणजी को हिन्दी साहित्य में गाँधीवाद का भावात्मक व्याख्याता कहकर सम्बोधित किया जाता है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कई लेखक गाँधीजी के व्यक्तित्व से प्रभावित थे और उनकी रचनाओं में गाँधीवाद के कुछ वैचारिक सूत्रों का उपयोग भी हुआ है। पर दर्शन-विचारधारा को अपने समग्र व्यक्तित्व में विलयित करने का श्रेय सियारामशरणजी को दिया जाता है। यहाँ डा. नगेन्द्र को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा: 'अप्रत्यक्ष रूप से तो आज के अधिकांश साहित्य पर गाँधी-दर्शन का गहरा और अन्तर्व्यापी प्रभाव है, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से उससे सीधी प्रेरणा लेने वाला तथा उसे समग्र रूप में स्वीकार करने वाला साहित्य परिमाण में अत्यन्त स्वल्प है। हिन्दी कविता में इसके प्रतिनिधि हैं, सियारामशरण गुप्त जिन्होंने गाँधी-दर्शन को प्रथम और समग्र रूप में ग्रहण किया है।'

सियारामशरण का जीवन घटना-बहुल न होकर एक ऐसे सात्विक व्यक्ति का जीवन है जो गाँधीवादी आदर्श, नैतिक आचरण को स्वीकार करता है। अपनी शारीरिक

अस्वस्थता के कारण वे राजनैतिक दृष्टि से अधिक सक्रिय न हो सके, पर उन्होंने रचना को अपनी सम्पूर्ण निष्ठा दी। उनके जीवनकाल में साहित्य-जगत ने उनकी कृतियां को मान-सम्मान दिया और उन्हें आदरपूर्ण स्वीकृति मिली। २९ मार्च १९६३ को उनके निधन से काव्य में गाँधीवाद का भावात्मक व्याख्याता चला गया। पुरानी-नयी पीढ़ी ने इसे साहित्य की क्षति मानते हुए श्रद्धांजलि अर्पित की। डा. शिवप्रसाद मिश्र ने अपने ग्रंथ **'सियारामशरण : व्यक्तित्व और काव्य'** में इनमें से कुछ का संकलन किया है। श्री यशपाल जैन के शब्दों में: 'उनके जीवन में करुणा, परदुखकातरता, स्नेह, मिलनसारिता आदि गुणों का समावेश था। इन्हीं के कारण उनका साहित्य प्राणवान बना। यहाँ उन्हें मानव स्पन्दन सुनायी देता था, चाहे वह पुरातन हो या नवीन, वे उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रहे थे।' डा. नगेन्द्र ने सियारामशरणजी को 'गाँधी दर्शन का निश्छल व्याख्याता' कहकर सम्बोधित किया: 'गाँधीवाद की तपस्या को कला की आनन्दमयी अभिव्यक्ति प्रदान करने में कोई भी कलाकार उनसे अधिक सफल नहीं हुआ। इस दृष्टि से सियारामजी का स्थान भारतीय साहित्य में अप्रतिम है। कला का सौन्दर्य तो अन्यत्र भी मिलेगा, पर कला की पवित्रता आधुनिक युग में अन्यत्र न मिलेगी।' यह सियारामशरणजी के निराडम्बर व्यक्तित्व की स्वीकृति है।

सियारामशरण गुप्त ने अपने स्वास्थ्य की सीमाओं के बावजूद प्रचुर साहित्य का निर्माण किया जिससे उनके अन्तःकरण की प्रेरणा का पता चलता है। उनकी कविताएं १९१२-१३ से ही पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं, जिन्हें सरस्वती, प्रभा, श्रीशारदा आदि में देखा जा सकता है। इसी समय रवीन्द्र की कविताओं के उनके कुछ अनुवाद भी प्रकाशित हुए थे। मौर्य्यविजय उनकी प्रथम प्रकाशित कृति है जिसकी भूमिका में सियारामशरण ने चैत्र १९७१ वि. की तिथि दी है, अर्थात् लगभग १९१४ ई.। काव्य कृतियाँ है: मौर्य्यविजय, अनाथ, दूर्वादल, विषाद, आर्द्रा, आत्मोत्सर्ग, पाथेय, मृण्मयी, बापू, दैनिकी, नकुल, नोआखाली में, जयहिन्द, सुनन्दा, अमृतपुत्र, अनुरूपा, काव्य नाटक हैं: उन्मुक्त, गोपिका। उपन्यास हैं: गोद, अन्तिम आकांक्षा, नारी। 'मानुषी' कहानी संकलन है और पुण्यपर्व गद्य नाटक। 'झूठ-सच' उनका निबन्ध संकलन है। गीता-संवाद, बुद्ध वचन, प्रार्थना उनके अनुवाद हैं। इस प्रकार सियारामशरणजी ने कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध कई विधाओं में कार्य किया। गाँधीवाद से भावात्मक रूप से जुड़कर और अपनी रचनाओं में गाँधी-दर्शन को अभिव्यक्ति देकर, सियारामशरण गुप्त ने आधुनिक हिन्दी साहित्य विशेषतया काव्य में अपनी अलग पहचान स्थापित की।

# रचना-संसार

सियारामशरण गुप्त ने रचना की कई विधाओं में कार्य किया, यद्यपि उनका मुख्य व्यक्तित्व कवि का है। इस दिशा में वे अपने अग्रज राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अथवा जयशंकर प्रसाद की परम्परा का पालन करते हैं। सियारामशरण की कविताएं बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक से ही पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं। पर पहला काव्य मौर्य्यविजय १९७१ वि. १९१४ ई. में प्रकाशित हुआ। यदि कविता में उनके काव्य नाटक 'गोपिका' को सम्मिलित कर लिया जाय तो उसका प्रकाशन-काल २०२० वि., लगभग १९६३ ई. है जिसे हम जीवन काल में उनकी अन्तिम प्रकाशित रचना कह सकते हैं।

सियारामशरण का रचना-काल १९१४ से लेकर १९६३ तक फैला हुआ है और उन्होंने लगभग पाँच छः दशकों का समय पार किया। स्वाभाविक है कि इस लंबी अवधि की सामाजिक स्थितियों ने कवि को आन्दोलित किया। सुविधा के लिए हम उनके काव्य को दो प्रमुख चरणों में रखकर देख सकते हैं - पूर्ववर्ती और परवर्ती: (१) १९००-१९३६ (२) १९३७ - १९६३। प्रथम चरण में मौर्य्यविजय (१९१४) से लेकर मृण्मयी (१९९३ वि. लगभग १९३६ ई.) तक का काव्य है जिसमें ये काव्य आते हैं: **मौर्य्यविजय** (१९७१ वि., १९१४ ई.) **अनाथ** (१९७४ वि. १९१७ ई.), **दूर्वादल** (१९८१ वि. १९२४ ई.), **विषाद** (१९८२ वि. १९२५ ई.), **आर्द्रा** (१९८४ वि. १९२७ ई.), **आत्मोत्सर्ग** (१९८८ वि. १९३१ ई.), **पाथेय** (१९९१ वि. १९३४ ई.), **मृण्मयी** (१९९३ वि. १९३६ ई.)।

'मौर्य्यविजय' की संक्षिप्त भूमिका में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारतभारती' जैसी राष्ट्रीय भावना का संकेत करते हुए लिखा है कि 'यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरवपूर्ण हो तो उसका भविष्यत् भी गौरवपूर्ण हो सकता है। जो जिस बात पर अभिमान करता है – अथवा अभिमान करना सीखता है – वह एक न एक दिन अनुकूल कार्य करने की चेष्टा भी कर सकता है। पतित जातियों को उसके उत्थान में उनके अतीत गौरव का स्मरण बहुत बड़ा सहायक होता है।' आधुनिक भारतीय नवजागरण में राममोहन राय, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी से लेकर रवीन्द्रनाथ, जवाहरलाल नेहरू आदि तक इसी प्रकार के प्रयत्न हुए। स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हुए भारत ने अपनी समृद्ध परम्परा को देखा और कवियों ने

उसे अपना काव्य-विषय बनाया। सियारामशरण गुप्त ने अपनी यशस्वी अग्रज मैथिलीशरण गुप्त के प्रिय माध्यम–खंडकाव्य की स्वीकार किया, जिसके द्वारा 'मौर्य्यविजय' में वे सम्राट चन्द्रगुप्त की यशोगाथा कहना चाहते हैं : 'यद्यपि वे श्रीचन्द्रगुप्त जग में कहलाये/प्रकट चन्द्र से किन्तु उन्होंने गुण थे पाये।' 'मौर्य्यविजय' तीन सर्गों का काव्य है जिसमें मौर्य्यराज्य की प्रशंसा, यूनानी पराजय, चन्द्रगुप्त-एथेना का विवाह आदि प्रमुख प्रसंग हैं।

'अनाथ' काव्य में छोटे-छोटे चार खंड हैं और कुछ मिलाकर १२६ छंद। इसमें गाँव के निर्धन कृषक मोहन के अभावग्रस्त जीवन का वर्णन है, जो अपने परिवार का पालन-पोषण भी नहीं कर पाता। बड़ा बेटा मुरलीधर बीमार और छोटा भूख से तड़पता हुआ। मोहन महाजन के यहाँ अपना लोटा रखने जाता है ताकि बदले में कुछ अन्न प्राप्त कर सके। पर चौकीदार उसे पुलिस थाना भेज देता है जहाँ उसे बेगार करनी पड़ती है। थाने से छूटकर फिर बेगार में पकड़ लिया जाता है। इधर ऋण न चुका पाने के कारण काबुली महाजन मोहन की पत्नी यमुना को पकड़ ले जाता है। मोहन जब लौटता है तो देखता है कि पत्नी घर में नहीं है, बड़े बेटे का प्राणान्त हो चुका है और छोटा भूख के कारण मरणासन्न है। इस दुखान्त काव्य में सियारामशरण गुप्त सामाजिक यथार्थ का स्पर्श करते हैं और सामान्यजन को अपनी सहानुभूति देते हैं: दुःखित प्रपीड़ित हाय मोहन, जा रहे हो तुम कहाँ/हे नरक से भी दुःखमय दुर्दृश्य जाते हो कहाँ। राष्ट्रीय भावना के साथ जीवन यथार्थ का संयोजन सियारामशरण की रचना को गति देता है।

'दूर्वादल' का प्रकाशन 'अनाथ' काव्य के लगभग सात वर्षों बाद हुआ। इसमें कुल पैंतीस कविताएं हैं - स्फुट कविताओं का संकलन। 'दूर्वादल' की प्रथम कविता है - 'तुच्छ धूलि से बनी हुई' और अन्तिम है - 'वर्ष-प्रयाण'। धरती और मेघ के सम्बन्ध से कविता की रचना हुई है: छाकर करुणा-मेघ तुम्हारा घहरा ज्यों ही/सहसा चारों ओर हुआ परिवर्तन त्यों ही। 'दूर्वादल' की कविताओं के शीर्षक कई प्रकार के हैं: तुच्छ धूलि से बनी हुई, भेंट, विनय, विश्वास, अभागा कूल, शरणागत, गृह-प्रदीप, अनुरोध, मृत्यु-भय, गूढ़ाशय, माली के प्रति, परीक्षा, कामना, सुजीवन, अपूर्ण यात्रा, सन्तोष, लेखनी, सुअवसर, निर्विवेक, असमय, अनौचित्य, कृतघ्न, गत दिवस, जननी, तुलसीदास, समीर के प्रति, मूर्ति, कोजागर पूर्णिमा, घट, वीणा, कब, पथ, बाढ़, बुद्ध और वर्ष-प्रयाण। ये छोटी कविताएं कवि की प्रयोगशील स्थिति का बोध कराती हैं। यहाँ मुख्य रूप से कवि की अन्तर्मुखता, प्रकृति-प्रेम, वैष्णव भावना, चिन्तशीलता आदि को देखा जा सकता है।

'विषाद' कविता-संकलन के शीर्षक से कवि की मनोदशा का संकेत मिलता है। सियारामशरण की पत्नी का असमय निधन हो गया था और विषाद कवि की

चेतना पर छाया हुआ है: मेरा घर सूना था/अगम अरण्य का नमूना था (किरण)। अथवा उस दिन तू लिख गई कौन-सी गूढ़ कथा थी/लिखकर यह रख गई कौन सी मनोव्यथा थी (पत्र)। संकलन में कुल पंद्रह छोटी कविताएं हैं: जहाँ है अक्षय स्वर झंकार, दूरागत गान, किरण, चित्रांकिता, एक चमक, स्मृति, स्वप्न, वही तिथि, मौनालाप, सुवर्ण प्रतिमा, अभिसार, पत्र, घनाल्हाद, पलायित और विदा। यहाँ प्रिय की स्मृतियाँ हैं और उसके सदैव के लिए चले जाने का विषाद। एक प्रकार से कवि की वैयक्तिक पीड़ा से इन कविताओं की रचना हुई है।

१९२७ में प्रकाशित 'आर्द्रा' सियारामशरण गुप्त के प्रतिनिधि काव्य-संकलनों में है और कवि के भविष्य के प्रति आशान्वित करता है। प्रयोग भूमि से आगे बढ़कर, यहाँ वह सामाजिक आख्यान काव्य की विधा अपनाता है, जिसमें किसी कथा-अंश के माध्यम से कवि ने अपना काव्य-प्रयोजन व्यक्त किया है - मानवमूल्यों से सम्पन्न। इसमें कुल तेरह कविताएं हैं: हूक, प्रयाणोन्मुखी, डाकू, नृशंस, एक फूल की चाह, अग्नि-परीक्षा, चोर, डाक्टर, अबोध, वंचित, खादी की चादर, अब न करूंगी ऐसा और बन्दी। कथा कहने के लिए प्रायः पुराण इतिहास का आश्रय लिया जाता रहा है, पर सियारामशरण ने किसी सामयिक-सामाजिक घटना को, अपनी कल्पना से नया रूप दिया है जिसे उनकी मौलिकता कहा जा सकता है। डाकू, नृशंस, एक फूल की चाह, खादी की चादर, बंदी आदि कविताओं में कवि की आदर्शवादी सामाजिक चेतना देखी जा सकती है जिस पर गाँधीवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है। 'डाकू' कविता में हृदय-परिवर्तन सिद्धान्त का निरूपण है जहाँ एक बालिका को देखकर डाकू डाका डालना छोड़ देता है। 'नृशंस' दहेज-प्रथा पर आक्रमण है और 'एक फूल की चाह' में हरिजन-गाथा कही गई है। 'अग्नि परीक्षा' में साम्प्रदायिक दंगों की त्रासदी तो 'डाक्टर' में धनलोलुपता पर टिप्पणी। इस प्रकार 'आर्द्रा' काव्य संकलन सियारामशरण की कविता में नये विकास की सूचना है और उनकी प्रतिनिधि रचनाओं में इसे गिना जाता है। सामाजिक चेतना के साथ, यहाँ अभिव्यक्ति भी प्रौढ़ हुई है: घूमता फिरा में भूल भूख-प्यास/छिन्न पद, छिन्न वास/किन्तु वह रत्नाकर/अन्त में प्रतीत हुआ शंख-शुक्तियों का घर/प्यासा ही रहा मैं वहाँ/ जान सकता न यह पारस मिलेगा कहाँ (वंचित)। 'आर्द्रा' कवि का विश्वास भरा स्वर है और इस पर गाँधी-दर्शन का प्रभाव स्पष्ट है।

'आत्मोत्सर्ग' को हम सियारामशरण गुप्त की त्वरित प्रतिक्रिया का काव्य कह सकते हैं जिसमें श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के बलिदान की कथा है। महात्मा गाँधी ने इस काव्य को आशीर्वाद देते हुए लिखा है: 'गणेशशंकर विद्यार्थी को ऐसी मृत्यु मिली जिस पर हम सबको स्पर्धा हो। उनका खून अंत में दोनों मज़हबों को आपस में जोड़ने के लिए सीमेंट का काम करेगा।' भूमिका रूप में श्री मैथिलीशरण गुप्त

ने काव्य पंक्तियों के द्वारा श्री विद्यार्थी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है: भगतसिंह से शूर किसी भी पुरावृत्त के है शृंगार/पर पौराणिक युग में भी बस, शिवि-दधीचि तुझसे दो-चार। 'आत्मोत्सर्ग' में कवि का आशय श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के बलिदान के माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम भाई-चारे का प्रचार-प्रसार है जो गाँधीजी का प्रिय विषय था। 'आत्मोत्सर्ग' की पंक्तियाँ हैं: हिन्दू-मुसलमान दोनों ही, एक डाल के हैं दो फूल/और एक ही है दोनों का, बड़ा बनाने वाला मूल।

'पाथेय' की गणना कई दृष्टियों से सियारामशरण के प्रतिनिधि कविता-संकलनों में की जाती है। इसमें चवालीस कविताएं हैं – 'प्रणाम' से लेकर 'विदा के समय' तक। यह कवि की छोटी कविताओं का संकलन है और यहाँ अग्रज मैथिलीशरण गुप्त जैसा कथाकाव्य का माध्यम नहीं अपनाया गया है। इस दृष्टि से 'आर्द्रा' कथा-आश्रित काव्य है जिसमें कथानक के माध्यम से कवि ने अपने आशय की अभिव्यक्ति की है। 'पाथेय' छायावाद के उत्कर्ष-काल की रचना है और उस पर स्वच्छन्दतावादी प्रभाव देखे जा सकते हैं। शीर्षकों में भी इसका संकेत मिलता है: विदा, दुर्वार, बोध, पुलक-प्राप्ति आदि। पर 'पाथेय' की कविताएं सियारामशरण की गहराती चिन्तनशीलता की परिचायक भी हैं। वे अपनी शारीरिक अस्वस्थता के कारण पर्याप्त अन्तर्मुख रहे हैं और ऐसा संवेदनशील व्यक्ति जीवन-जगत के विषय में अपने ढंग से सोच-विचार करता है। इसमें गाँधीवादी विचारधारा एवं वैष्णव चेतना का भी योग है। कविता में विचारों का प्रवेश सियारामशरण गुप्त के व्यक्तित्व को एक नयी ऊर्जा प्रदान करता है: तेरे यहाँ लगा रहता है, अविरल यह आना-जाना/रुकता नहीं अश्रुजल तेरा, और न स्वागत का गाना।

'मृण्मयी' सियारामशरण गुप्त के पूर्ववर्ती काव्य-चरण का अंतिम काव्य-संकलन है जिसमें ग्यारह छोटी-बड़ी कविताएं हैं: रज-कण, लाभालाभ, मंजुघोष, नाम की प्यास, छल, ग्वालिनें, सम्मिलित, अमृत, पुनरपि, भोला और खिलौना। 'मृण्मयी' में गाँधीवादी प्रभाव को इस दृष्टि से एक और गहराई मिलती है कि कवि उसे व्यापक जीवनदर्शन के सन्दर्भ में देखता है। उसने अपनी जीवन-दृष्टि विकसित करने का प्रयत्न किया है। अधिकांश कविताएं कवि की जीवन-यथार्थ-सम्बन्धी समझ से प्रेरित हैं, जैसे मंजुघोष, जहाँ अकाल का वर्णन है। धरती से लगाव कवि को नया विकास देता है: अहा, यही वह धन्य धरित्री, बलिहारी यह रूप/ सुन्दरि, अयि कल्याणि, शुभंकरि, तेरी छटा अनूप। लंबी कविताएं-पुनरपि, भोला, लाभालाभ, नाम की प्यास, मंजुघोष आदि में चिन्तन को भावना से संयोजित करने का जो प्रयत्न है, वह कविता के सुनिश्चित भविष्य की सूचना है।

कविता का दूसरा और अंतिम चरण १९३७ से १९६३ तक माना जा सकता है, अर्थात् छायावाद के बाद का समय। इसमें बापू (१९३८), दैनिकी (१९४२), नकुल

(१९४६), नोआखाली (१९४७), जयहिन्द (१९४७), सुनन्दा (१९५६), अमृतपुत्र (१९५९) कविता-संकलन आते हैं। दो काव्य नाटक भी हैं: उन्मुक्त (१९४०) और गोपिका (१९६३)। इस अंतिम काव्य-चरण में कविता विकास के उस प्रौढ़ बिन्दु को प्राप्त करती है, जिसकी आरंभिक सूचना 'दूर्वादल' में मिलती है और आर्द्रा, पाथेय, मृण्मयी में विकास। अगला काव्य-चरण 'बापू' से 'गोपिका' तक उसी का नया विन्यास है।

'बापू' का प्रकाशन ७० वीं गाँधी जयंती (१९९५ वि) के अवसर पर हुआ और पत्र रूप में गाँधी के निजी सचिव महादेव देसाई ने इसकी भूमिका लिखते हुए कहा है: 'उस जनता से कौन पूछता है कि तुमने बापू से कितना पाया?' उसने तो जितना धन पाया, उसका सदुपयोग ही कर रही है। दुर्भाग्य तो हमारा है कि हमने पाया, परन्तु पूरा अपनाया नहीं है। हमसे जगत पूछेगा तो क्या उत्तर देंगे?' यहाँ महादेव देसाई ने आचरण का महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया है और इस दृष्टि से सियारामशरण गुप्त सच्चे गाँधीवादियों में हैं। गाँधी का दर्शन सियारामशरण का महत्त्वपूर्ण प्रेरणा स्रोत है और इस काव्य का बीजारोपण गाँधी के चिरगाँव-आगमन के समय हुआ था, पर पूर्णता मिली कुछ समय बाद, १९३८ में। कवि ने दिल्ली में बापू की सत्तरवीं वर्षगांठ के अवसर पर यह काव्यकृति उन्हें अर्पित की। इसमें गाँधीजी से सम्बद्ध इक्कीस कविताए हैं जिसमें कवि का श्रद्धाभाव प्रमुख है। सियारामशरण ने गाँधी को महात्माओं की परम्परा में रखकर देखा है जिसने अपने समय को नया आलोक दिया: छूटकर काल निशा कारा से, मेघ-जाल भेदकर प्रात-रश्मि बिखरी/श्यामोज्ज्वल शान्त दीप्ति-धारा से, श्यामल धरित्री, अहा निखरी। गाँधी के आगमन को कवि नवीन सृजन के श्रीगणेश और नव्य भव्य जीवन आधार के रूप में देखता है (पृ. ५९)। विश्वमाता के रूप में भारत की कल्पना महाकवि रवीन्द्र के राष्ट्रगान जन गण मन के समीप है। 'बापू' काव्य का महत्त्व यह कि यहाँ गाँधीवाद को वर्णनात्मक सीमाओं से आगे ले जाकर संवेदन-स्तर पर व्यक्त किया गया है।

'दैनिकी' शीर्षक से ही ध्वनि आती है कि इस काव्य-संकलन की रचना सामयिक संदर्भों – महायुद्ध आदि से अधिक प्रभावित है। 'प्रारम्भिक' वक्तव्य में सियारामशरणजी का कथन है : "दम घोंट देने वाले जिस वातावरण में आजकल रहना पड़ रहा है, उसमें दबी हुई भावनाओं का आलेखन इसमें किया है। उसमें कवित्व कला संभव भी न थी।" जाहिर है कि कविता पर समय के दबाव हैं। कविता–संकलन में सत्तर कविताएं हैं जिनके विषय कई प्रकार के हैं, पर उन पर अपने समय की छाया है, जिससे कवि गुजर रहा है। गौतम बुद्ध का स्मरण करके कवि शान्ति का आग्रह करता है। हिरोशिमा पर अणुबम का गिरना कवि को भीतर तक विचलित कर देता है। सहसा ऊपर प्रलय मेघ-सा एक यान वह घहरा/ विस्फोटों के वज्रपात में काल हो उठा बहरा। 'दैनिकी' में कवि की सहानुभूति सामान्यजन के

साथ बहुत स्पष्ट रुप में व्यक्त हुई है। रोते शिशु, पैसों का खेल, मनुष्य की पशुता, मजूर का कष्ट, दुःख-दारिद्र्य, विनाश-मरण, उपेक्षित दीन-हीन प्राणी, युद्ध का विरोध, यांत्रिक सभ्यता आदि को यहाँ देखा जा सकता है। इसे हम कवि की व्यापक मानवीय चिन्ता कह सकते हैं। यहाँ राष्ट्रीय भावना विश्व धरातल में जुड़ जाती है और कविता के विषय को नया आयाम मिलता है। कविता नये यथार्थ से जुड़ती है - भुजंग, गीध, वृक, मीन के प्रतीक आते हैं (शरीर साधन) जिससे सुमित्रानन्दन पंत की 'परिवर्तन' कविता का स्मरण हो आता है।

'नकुल' काव्य का कथानक 'महाभारत' से लिया गया है। वनवास का अंतिम दिन है और घटनाएं एक ही दिन से सम्बद्ध हैं। अमृतह्रद जलाशय की अदृश्य-शक्ति पांडवों से पाँच प्रश्न करती है, पर वे उत्तर नहीं देते। अंत में युधिष्ठिर आते हैं और प्रश्नों का उत्तर देते हैं। शक्ति उनसे कहती है कि वे किसी एक भाई को जीवित देख सकते हैं। धर्मराज नकुल के लिए जीवन-दान मांगते हैं और उनका तर्क है कि एक का पुत्र मैं और दूसरे का नकुल। मैं दोनों के सुख की कामना करता हूँ। शक्ति सभी पांडवों को जीवित कर देती है। पाँच खंडों की इस कथा में कई प्रसंग उभरते हैं जिससे ज्ञात होता है कि प्रचलित मूल कथानक में आंशिक परिवर्तन किए गए हैं, जैसे अर्जुन-द्रोपदी के स्नेह भरे वार्तालाप। द्रौपदी रामकथा का स्मरण करती है: मैंने था यह सुना बड़ों से बालापन में/सीता अनुज-समेत राम जब रहे विजन में/वह प्रिय पुण्य प्रकाश देखने स्वयं नयन-भर उतरी थीं/तब स्वामि-संग गौरी भूतल पर। 'नकुल' काव्य के माध्यम से जो वैचारिक-बिन्दु उभरे हैं, वे विशेष रूप से विचारणीय हैं।

'नोआखाली में' काव्य की संक्षिप्त भूमिका में सियाराशरणजी ने अपनी अस्वस्थता का उल्लेख किया है। इसमें कुल ग्यारह कविताएँ हैं: अखण्डित, मातृभूमि के प्रति, अक्षय, ग्यारह दोहे, रमजानी, पाक कलाम, विहार के प्रति, ध्वंस, नोआखाली में, निशान्त और हमारा देश। कवि के अनुसार एक 'हमारा देश' को छोड़कर सभी कविताएं नई हैं। उसने नोआखाली की भयंकर पीड़ा का अनुभव किया है। इस कविता संकलन का मुख्य प्रतिपाद्य हिन्दू-मुस्लिम सौमनस्य की स्थापना है जिसके लिए महात्मा गाँधी, गणेशशंकर विद्यार्थी आदि ने अपने प्राण दे दिए। इन कविताओं में कबीर जैसा तीक्ष्ण व्यंग्य नहीं है, पर आशय दोनों जातियों में मेल-जोल की स्थापना का है: जब तक धड़ के ऊपर सिर है, किये समुन्नत भाल/इसकी दाढ़ी, उसकी चोटी अक्षय है चिरकाल (अक्षय)। राष्ट्रीय भावना का सांस्कृतिक पक्ष/जातीय एकता इन कविताओं का मुख्य स्वर है। इसे व्यक्त करने कि लिए रमजानी, पाककलाम जैसी कविताएँ रची गईं जिनका परिवेश दोनों जातियों से जुड़ा है। 'नोआखाली में' इस संकलन की प्रमुख रचना है जहाँ पशुता ने खेल खेला: जले-फुंके गेहों में आहत, नहीं किसी रखवाली में/उजड़ा-उजड़ा एक गाँव यह है इस नोआखाली में।

'जयहिन्द' सोलह पृष्ठों की छोटी-सी काव्य-रचना है जिसकी प्रेरणा पंद्रह

अगस्त, १९४७ का स्वतंत्रता दिवस है। यहाँ कवि देश की यशस्वी परम्परा का स्मरण करता है। फिर गाँधी के आन्दोलन की महत्त्वपूर्ण भूमिका का उल्लेख है, विशेषतया अहिंसक क्रान्ति का। कवि भावुकता के साथ अपने देश के सौन्दर्य को उरेहता है: क्षिति के किरीट रत्न तेरे हिमालय से/ला सकूं पवित्रता गगन की/तेरे पग धोते हुए सागर के तल से। यहाँ निराला के गीत 'भारति जय विजय करे' की पंक्तियाँ याद आती हैं: लंका पदतल शतदल/गर्जितोर्मि सागर जल/धोता शुचि चरण/युगल स्तव कर बहु अर्थ भरे।

'सुनन्दा' का प्रकाशन २०१३ वि., १९५६ ई. में हुआ, पर आश्चर्यजनक है कि कम विद्वानों ने इस कृति की ओर ध्यान दिया है। कवि के अनुसार संक्षेप में कथासूत्र इस प्रकार है: नक्षत्र नगर की अप्रत्याशित घटना से सभी शंकित हैं। यहाँ अमल वंश का राज्य है जिसकी अपनी प्रतिष्ठा रही है। राजा शासन के लिए छोटी रानी पर निर्भर है जो राजकुमार से बहुत संतुष्ट नहीं। विद्रोह की आशंका है और रानी इसे रोकने की व्यवस्था करती है। कथा में राजकुमार और उसकी प्रिया सुनन्दा, उसकी मित्राणी चम्पा तथा उसके प्रेमी सुरंजन की प्रेमकथा अन्त तक है। यहाँ प्रकृति का उपयोग है और उसके माध्यम से जीवन-सम्बन्धी कुछ संकेत: गया गगन युग, नया भूमि युग, देख रहे दृग मेरे/प्रतिपल धसक रहे हैं दुर्दम, कठिन क्रूर के घेरे।

'अमृत-पुत्र' इस क्रम में सियारामशरण का अन्तिम काव्य संकलन है जिसमें प्रभु ईसु की कथा है। इससे कवि की उदार धर्मनिरपेक्ष दृष्टि का परिचय मिलता है। इसे उसने आचार्य विनोबा भावे की प्रेरणा माना है। काव्य के दो प्रमुख खण्ड हैं: 'सामरी' जिसका सम्बन्ध यहूदियों के पवित्र स्थान समारा से है। 'क्रूसधर' खंड के शीर्षक से ही स्पष्ट है कि इसमें अपना सलीब स्वयं ढोते हुए ईसु तथा सायमन का वर्णन है। 'अमृत-पुत्र' काव्य की प्रेरणा ईसा मसीह का पवित्र जीवन है। ईसु के जन्म के समय निरकुंश राजा हैरोद का शासन था जिसमें प्रजा की स्थिति शोचनीय थी। इससे मुक्त के लिए महात्माओं ने नये विचार प्रस्तुत किए। कवि ने ईसु के उपदेशों के व्यापक प्रभाव की चर्चा की है। उनके अंतिम शब्द थे: कर क्षमा, उनको पिता, तू कर क्षमा/कर रहे क्या, वे नहीं यह जानते। 'सामरी' कविता में उस सामान्य स्त्री का वर्णन है जिससे ईसु ने जल मांगा था। 'क्रूसधर' में यीशु का बलिदान है: सर्व शुभ संवाद चारों ओर है/भू-शयन से जग गए हैं ईसु प्रभु खोलकर प्रस्तर-कपाट समाधि के। इस काव्य में उस समय की अनैतिकता की चर्चा है और ईसु के माध्यम से मुक्ति के उपाय। ईसु की करुणा को यहाँ विशेष रूप से चित्रित किया गया है जिससे विराट व्यक्तित्व उभरता है। यह काव्य सियारामशरण की उदार सांस्कृतिक दृष्टि का परिचायक है।

उन्मुक्त (१९४०) और गोपिका (१९६३) सियारामशरण गुप्त के दो काव्य-नाटक

हैं जिन्हें उनकी कविता-धारा के अन्तर्गत ही रखना है उचित होगा। 'उन्मुक्त' की कथा का सम्बन्ध मुख्यतया कुसुम द्वीप से है जिसमें अन्य द्वीपों का भी उल्लेख है। समस्त कथानक कुछ शीर्षकों में विभाजित हैः अवतरण, अलिन्द, घोषणा, रणक्षेत्र, रणस्थल, मृदुलालय, सुश्रूषालय, शिविर, ध्वंस, एकान्त, संचालन शिविर, शयन-कक्ष, बन्दी, विज्ञप्ति, पराभव और उन्मुक्त। वास्तव में इन शीर्षकों को ही दृश्य का रूप दे दिया गया है। कुसुम द्वीप युद्ध के भय से आशंकित है जिसके शक्ति संचालक गुणधर हैं। उनकी पत्नी मृदुला कुसमावती द्वीप की प्रतीक अधिष्ठात्री देवी है। पुष्पदन्त द्वीप का सेनापति है। लौह द्वीप के आक्रमण से कुसुमद्वीप क्षुब्ध हो उठता है और सभी द्वीप की रक्षा का संकल्प लेते हैं। संघर्ष के मूल में सियारामशरण युद्ध की विभीपिका को देखते हैं और गाँधीवादी ढंग से हिंसा का विरोध करते हैं। यहाँ तक कि जब गुणधर की पत्नी मृदुला की सखी हेमा का अपहरण होता है, तब भी वे उग्र नहीं होते। सेनापति पुष्पदन्त उसे राष्ट्रद्रोह के अपराध में बन्दी बना लेता है, फिर भी वह युद्ध को त्याज्य मानता हैः कैसा वह मद जिसे शुत्र सैनिक पी-पीकर/ऐसे सुध-बुध-भूल हो उठे है धरती पर? नाटक के अन्त में गाँधीवादी हृदय-परिवर्तन का उपयोग करते हुए अहिंसा दर्शन की स्थापना की गई है। पुष्पदन्त गुणधर को मुक्त कर देता है और अहिंसा का समर्थन करता है। युद्ध-हिंसा का विरोध इस काव्य-नाटक का मुख्य प्रतिपाद्य है।

'गोपिका' काव्य-नाटक कृष्णकाव्य की परम्परा में है। कवि की अन्तिम कृति होने के कारण इसे हम समापन-काव्य भी कह सकते हैं। इसकी रचना कवि ने बारह वर्षों में की, जो पर्याप्त लम्बा समय है। कथा-सूत्र के रूप में ब्रजभूमि का गोपी-ग्राम है जिससे कृष्ण के द्वारका जाने से लेकर लौटने तक की कथा जुड़ी हुई है। इसे 'उन्मुक्त' काव्य-नाटक की तरह शीर्षकों में विभाजित किया हैः उपक्रम, इन्दुमती, दुर्जय कुमार, रुचिरा और आमोद, भद्र और एक यात्री, आमोद, भद्र, मंजुला, हंस, वृन्दावाटिका आदि। कुछ शीर्षक दुहराए भी गए हैं। ब्रज और द्वारका से जुड़ी कथा सत्रह खण्डों में है। कृष्ण गोकुल से द्वारका के लिए प्रस्थान करते हैं और गोपिका इन्दुमति उनके वियोग में विषाद में डूब जाती है। एक ओर कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम का वर्णन है, दूसरी ओर कवि ने दस्युओं के उत्पात का भी उल्लेख किया है। काव्य-नाटक के अन्त में कृष्ण की तरह स्वस्थ रखना है, तुम्हें सर्व को/निखिल को रहना तुम्हें है यहीं श्री सुरभि पथ पर/संचय के साथ-साथ त्याग का उपार्जन करो सप्रेम। रागात्मक प्रेम के जिस आध्यात्मिक स्वरूप की प्रतिष्ठा इस काव्य में की गई है, वह कृष्णकाव्य को नयी अर्थदीप्ति देता है जिसमें कवि का मानवीय चिन्तन विशेष सक्रिय है और इसमें वैष्णव चेतना का भी योग है।

कविता के साथ सियारामशरण ने गद्य-रचना भी की– उपन्यास, कहानी, निबन्ध,

नाटक आदि। गोद (१९३२ ई), अन्तिम आकांक्षा (१९३४ ई) और नारी (१९३७ ई)। सियारामशरण के उपन्यास हैं जो रचना के प्रथम चरण में लिखे गए। 'गोद' उपन्यास की दिशा में उनका प्रथम प्रयास है जिसमें ग्रामजीवन की कथा ली गयी है। यद्यपि इसकी कथा में कुछ आकस्मिकताएं हैं, प्रेमचन्द के आरंभिक उपन्यासों की तरह, पर सियारामशरण ने घटनाओं में एक क्रम स्थापित करने का प्रत्यत्न किया है। दयाराम अपने भतीजे शोभाराम को बहुत मानते हैं और किशोरी से उसका विवाह करना चाहते हैं। किशोरी ग्राम-मेले में खो जाती है और तरह-तरह की टिप्पणियों से घिर जाती है। उसकी माँ यद्यपि उसका विवाह किसी और से करना चाहती है, पर शोभाराम किशोरी से चुपचाप विवाह कर लेता है। 'गोद' की कहानी ग्राम के पारिवारिक जीवन को लेकर सीधे-सादे ढंग से कही गई है। एक ओर दो भाइयों का प्रेमभाव है, दूसरी ओर शोभाराम के माध्यम से युवक की नयी जीवनदृष्टि का संकेत।

'अंतिम आकांक्षा' सियारामशरण का दूसरा उपन्यास है जिसमें भी कथा ग्राम-जीवन से ली गयी है। घरेलू नौकर रामलाल के इर्द-गिर्द यह कथा केन्द्रित है जो उपन्यास का मुख्य पात्र है। रामलाल पर डाकू की ब्रह्महत्या का आरोप है और वह समाज की लांछना सहता है। पर स्वाभिमानी ऐसा कि किसी उपकार के बदले में कोई पुरस्कार नहीं लेना चाहता। ज्यादती यह कि रामलाल को डाकू तक समझ लिया जाता है, वह कारावास भोगता है। पर इस सबके बीच ईमानदार घरेलू नौकर रामलाल को मालकिन का स्नेह मिलता है। कथा प्रथम पुरुष में कही गई है और उपन्यास स्वयं कथा–वाचक है। कथा के अंत में रामलाल से जेल में भेंट का दृश्य है जहाँ उसकी यही आकांक्षा है कि दूसरे जन्म में वह फिर अपने मालिक की चाकरी पर पहुँचे। कहा जाता है कि यह सच्ची घटना पर आधारित है।

'नारी' सियारामशरण गुप्त का तीसरा उपन्यास है जिसके शीर्षक से ही स्पष्ट है कि इसमें कवि-कथाकार की नारी-दृष्टि उजागर हुई है। उपन्यास की प्रमुख पात्र जमुना है जिसका पति वृन्दा कलकत्ता में नौकरी करता है, जो ग्राम-समाज का सामान्य दृश्य है। एक दिन अचानक वृन्दा के पत्र आना बन्द हो जाते हैं और ससुर का भी निधन हो जाता है। असहाय जमुना अपने बेटे हल्ली के सहारे चलती है। गाँव का अजित उससे विवाह करना चाहता है। पहले तो वह मना कर देती है, पर जब चाहती है तो अजित अपने आदर्शवाद में ऐसा नहीं कर पाता। कहानी काफी उलझी हुई है, जैसे जमुना की ओर से हीरा का वृन्दा को झूठी सूचनाओं वाला पत्र लिखना, जो काम मोतीलाल चौधरी भी करते हैं। वृन्दा महाजनों का शिकार होता है और कलकत्ता वापिस चला जाता है। जमुना अकेले ही विपत्ति झेलती है। वास्तव में 'नारी' उपन्यास में सियारामशरण ग्राम-महिला की व्यथा-कथा कहना चाहते हैं कि उसे कितने संघर्ष

से गुज़रना पड़ता है। पर यहीं वे ग्राम-जन के कई प्रकार के शोषण की बात भी कहते हैं। जमुना को उन्होंने कथा-नायिका के रूप में चुनकर भारतीय ग्राम्य-नारी के प्रति अपना सम्मान-भाव व्यक्त किया है, साथ ही समाज की विसंगतियों पर टिप्पणी भी की है।

'मानुषी' (१९३८) सियारामशरण का कहानी संकलन है जो पूर्ववर्ती चरण की रचना है। इसमें आठ कहानियाँ हैं: मानुषी, कष्ट का प्रतिदान, रुपये की समाधि, पथ में से, बैल की बिक्री, त्याग, कोटर और कुटीर तथा काकी। इसमें 'कोटर और कुटीर' जैसी कहानी है जिसकी गणना सर्वोत्तम प्रतीक कहानियों में की जाती है। कहानियों में सियारामशरण का सामाजिक आशय बार-बार झलकता है। एक ओर बाह्य जीवन-यथार्थ है जैसे मानुषी, त्याग आदि में, दूसरी ओर मानव-मन के भीतर झाँकने का प्रयत्न भी है जैसे काकी में। अपने सीमित अनुभव-संसार का उपयोग करते हुए सियारामशरण ने कहानियों की विषय-वस्तु में प्रायः पारिवारिक परिवेश को प्रमुखता दी है। यहाँ सामान्यजन को स्वीकृति मिली है जिनकी कथा सहज ढंग से कही गई है।

'झूठ-सच' (१९४०) सियारामशरण गुप्त का निबन्ध संकलन है। ये निबन्ध लम्बी अवधि में लिखे गए हैं। इसमें अट्ठाइस निबंध हैं – 'बहस की बात' से लेकर 'झूठ-सच' तक। 'प्रारंभिक' भूमिका में सियारामशरण ने स्वयं स्वीकार किया है कि इनमें जहाँ-तहाँ निजी बातें भी मिलेंगी, जिसे हम संस्मरणात्मक भी कह सकते हैं। निबंधों के शीर्षक हैं: बहस की बात, एक शीर्षक, ऋणी, मनुष्य की आयु के दो सौ वर्ष, अन्य भाषा का मोह, अपूर्ण, एक दिन, बाल्यस्मृति, साहित्य और राजनीतिक, मुंशी जी, शुष्को वृक्षः, छुट्टी, साहित्य की क्लिष्टता, आशु रचना, घोड़ाशाही, छत पर, घूंघट में, कवि-चर्चा, निज कवित्त, वर की बात, धन्यवाद, साल का नया दिन, अबोध, हिमालय की झलक, कवि की वेश-भूषा, उसकी बोली, नया संस्कार और झूठ-सच। शीर्षकों से ही निबंधों में विषय की विविधता का पता चल जाता है। कहीं वैयक्तिक बातें हैं, कहीं कवि का संवेदन और कहीं समय के प्रश्नों पर विचार। यहाँ तक कि कथा-शिल्प का भी सहारा लिया गया है, जैसे 'झूठ-सच' निबंध में। वर्णनात्मक ढंग से आरंभ होकर 'हिमालय की झलक' निबंध काव्यात्मक हो जाता है: 'जान पड़ता है, स्वर्ग-विहार करने वाली आत्माएं पुण्य के क्षीण होने पर ही अनिच्छा के साथ पृथ्वी पर नहीं लौटतीं। पृथ्वी पर भी कुछ गरिमा है, कुछ ऐसी स्नेह-माधुरी है, कुछ ऐसा आकर्षण है, जिसके कारण स्वेच्छा से ही उन्हें इसकी गोद में फिर आना पड़ता है। इस आकर्षण की गुरुता से और तीव्रता से और शक्तिमत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता।'

'पुण्य-पर्व' उनका एक मात्र गद्य नाटक है जिसका प्रकाशन १९८९ वि. (१९३२

ई) में हुआ और इस दृष्टि से यह उनकी आरंभिक रचनाओं में है। 'पुण्य-पर्व' में लेखक ने कोई भूमिका नहीं दी है, आरंभ में पात्र-परिचय है, बस। नाटक में कुल तीन अंक हैं और तीनों में दो-तीन दृश्य। कथानक का समय गौतम बुद्ध के जन्म से पूर्व का है और स्थान हस्तिनापुर तथा मृगचिरा ग्राम के राजप्रसाद एवं वन। इसके प्रमुख पात्र हैं: इन्द्रप्रस्थ के राजा सुतसोम अथवा श्रुतसोम, उसकी पत्नी विशाखा, सहचर सचिव यशोधन, वाराणसी का निर्वासित राजा ब्रह्मदत्त, उसके अनुचर किंकर-रसक, गाथाकार ब्राह्मण नन्द आदि। 'पुण्य-पर्व' नाटक में पात्रों का विभाजन सत-असत वर्गों में किया गया है जिनका प्रतिनिधित्व क्रमशः सुतसोम तथा ब्रह्मदत्त करते हैं। कथानक संघर्ष से गुजरता है, पर अंत में गाँधीवादी ढंग से हृदय-परिवर्तन दिखाया गया है और ब्रह्मदत्त पर सुतसोम के प्रेम की विजय होती है। गाँधीवादी नायक की तरह सुतसोम कहता है: 'सैन्य-बल की अपेक्षा मुझे अपनी सद्भावना का ही अधिक भरोसा है।. . . मैंने निश्चय कर लिया है बलि पहले मेरी होगी, प्राण पहले मेरा जायगा, तब पीछे दूसरों की बारी आएगी।' सियारामशरण ने इस नाटक में गाँधीदर्शन की जो नियोजना की है, उसका प्रयोजन यह भी है कि इसे मंचित किया जा सके।

गीता संवाद (१९४८), हमारी प्रार्थना (१९५२) और बुद्धवचन (१९५६) सियारामशरण गुप्त की तीन अनूदित रचनाएं हैं। गीता-संवाद श्रीमद्भगवद्गीता का समश्लोकी अनुवाद है और सियारामशरणजी ने स्वयं स्वीकार किया है कि इसकी प्रेरणा महात्मा गाँधी है जो प्रार्थना सभा के लिए लोकभाषा में अनुवाद चाहते थे। पर इसमें संत विनोबा भावे के गीता अनुवाद की भी प्रेरणा है। 'बुद्धवचन' बौद्ध ग्रंथ 'धम्मपद' का अनुवाद है। 'हमारी प्रार्थना' विनोबाजी की प्रातःकालीन मराठी प्रार्थना का अनुवाद है। इन तीनों अनुवादों से सियारामशरण की उदार वैष्णव चेतना का आभास मिलता है।

इस प्रकार सियारामशरण गुप्त ने लंबी रचनायात्रा की १९३६ ई. से १९६३ ई. तक। उन्होंने कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, अनुवाद कई दिशाओं में कार्य किया। गांधीवाद की मानवीय दृष्टि उन्हें निरन्तर प्रेरणा देती है जिसका प्रकाशन उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है।

# काव्य : प्रथम चरण

सियारामशरण गुप्त के काव्य का एक चरण १९१४ से १९३६ तक स्वीकार किया जा सकता है जिसमें मौर्य्य विजय, अनाथ, दूर्वादल, विषाद, आर्द्रा, आत्मोत्सर्ग, पाथेय, मृण्मयी काव्य आते हैं। 'मौर्य्यविजय' सियारामशरण का प्रथम प्रकाशित काव्य है। इसकी संक्षिप्त भूमिका में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य 'भारतभारती' जैसी राष्ट्रीय भावना का संकेत करते हुए लिखा है: 'यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरवपूर्ण हो तो उसका भविष्यत् भी गौरवपूर्ण हो सकता है। पतित जातियों को उनके उत्थान में उनके अतीत गौरव का स्मरण बहुत बड़ा सहायक होता है।' स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हुए भारत ने अपनी समद्ध परम्परा की ओर देखा और उससे सक्रिय प्रेरणा ली। सियारामशरण ने अपने अग्रज जैसा कथाकाव्य खण्डकाव्य का माध्यम स्वीकार किया जिसके द्वारा वे सम्राट चन्द्रगुप्त की यशोगाथा कह सके। भारतभूपति चन्द्रगुप्त थे तेजोधारी/शासन उनका प्रजावर्ग को था सुखकारी।

'मौर्य्य विजय' खंडकाव्य में तीन सर्ग हैं। प्रथम सर्ग में चन्द्रगुप्त के शासनकाल की सुव्यवस्था का वर्णन है जिसके माध्यम से कवि आदर्श राज्य का संकेत करना चाहता है। सम्राट स्वयं सद्गुणशील, बल-विक्रम से सम्पन्न थे और उनके राज्य में सर्वत्र सुख था: भारत भाग्यकाश स्वच्छ था, सुप्रसन्न था/सर्वत्र सुकाल, विपुल धन और अन्न था। यहीं यूनानी शासक सिल्यूकस का उल्लेख है जो सम्पूर्ण भारत पर विजय प्राप्त करने का स्वप्न देखता है। सियारामशरणजी का प्रमुख उद्देश्य चन्द्रगुप्त के माध्यम से भारत के जातीय गौरव का उल्लेख करना है, जिससे आज भी प्रेरणा ली जा सकती है। इसके लिए सैनिक गीत का प्रयोग किया गया है: इसी भूमि पर राम-कृष्ण ने जन्म लिया है/ऋषि-मुनियों ने प्रथम ज्ञान-विस्तार किया है। संभव है 'मौर्य्य-विजय' की रचना में मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' की भी प्रेरणा हो क्योंकि सियारामशरण ने उसकी पंक्तियाँ मुख्यपृष्ठ पर उद्धृत की हैं : वह चन्द्रगुप्त महीप था कैसा अपूर्व महाबली।

'मौर्य्य-विजय' के द्वितीय सर्ग में सैनिक शिविर का दृश्य है और चन्द्रगुप्त-सिल्यूकस युद्ध जिसमें चन्द्रगुप्त की निर्णायक विजय होती है। यहाँ भी कवि का ध्यान राष्ट्रीय भावना पर अधिक है और भारतीय सैनिक निरन्तर देश-प्रेम का बखान करते हैं: आओ वीरों आज देश की कीर्ति बढ़ा दें/सबके सम्मुख मातृभूमि को शीश चढ़ा दें। यहाँ एक बलिपंथी का भाव दिखाई देता है जिसके लिए माखनलाल

चतुर्वेदी जैसे कवियों का उल्लेख विशेष रूप से किया जाता है:

मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ में तुम देना फेंक/मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक (पुष्प की अभिलाषा)।

द्वितीय सर्ग में वक्तव्यों की प्रधानता है, नाटक के लंबे कथोपकथन जैसे। तृतीय सर्ग का परिवेश रूमानी है जहाँ सिल्यूकस की बेटी एथेना के प्रति चन्द्रगुप्त के अनुराग भाव का संकेत है। जयशंकर प्रसाद ने अपने 'चन्द्रगुप्त' नाटक में भी इस प्रकार का चित्रण किया है। सियारामशरण को यहाँ भी भारतभूमि का ध्यान है। एथेना भारत को सराहती है: है यह सुन्दर देश नहीं किसको सुखदाई, जैसे प्रसाद की कार्नोलिया का गीत है: अरुण यह मधुमय देश हमारा। आगे चलकर दोनों का विवाह हो जाता है। खंडकाव्य का अंत देशप्रेम के भावनात्मक गीत से होता है: फिर एक बार हे विश्व तुम गाओ भारत की विजय। इसकी आवृति बार-बार होती है।

इतिहास से लिए गए इस प्रसिद्ध कथानक का उपयोग कई भारतीय रचनाकारों ने किया है। वर्णनात्मक ढंग से कथा कहना यहाँ सियारामशरण गुप्त का अभिप्रेत नहीं प्रतीत होता। वे इसके माध्यम से चन्द्रगुप्त-सिल्यूकस संघर्ष में, यूनान पर भारत की विजय स्थापित करते हैं। मुख्य भावना देश प्रेम की है जिसके लिए सैनिकों का उपयोग किया गया है, जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रतिनिधि प्रतीत होते हैं। प्राकृतिक दृश्यों से कवि की संवेदनशीलता का परिचय मिलता है। सियारामशरण गुप्त की प्रथम काव्यकृति 'मौर्य्य-विजय' राष्ट्रीय भावना का प्रयत्न है जिसके लिए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण का सादर स्मरण किया जाता है, जिन्होंने कहा था: हम कौन थे, क्या हो गए, और क्या होंगे अभी/आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी। 'मौर्य्य-विजय' में भारत की यशस्वी परम्परा का उल्लेख है: जग में अब भी गूंज रहे हैं गीत हमारे/शौर्य, वीर्य्य, गुण हुए न अब भी हमसे न्यारे।

आरंभिक रचनाओं में दूसरा काव्य 'अनाथ' है जिसमें कार्तिक संवत् १९७४ वि. की तिथि रचनाकाल के रूप में दी गई है। इस छोटे काव्य में चार खंड हैं और कुछ मिलाकर चार पंक्तियों के १२६ छंद। काव्य का आरंभ एक करुण दृश्य से होता है जहाँ गाँव का गरीब किसान मोहन जीवन के अनेक अभावों से जूझ रहा है: मिट्टी का बेडोल एक छोटा-सा घर है/सभी ओर से जीर्ण, शीर्ण, अतिशय जर्जर है। वह अकेले बीमार बेटे के लिए दवादारू का प्रबंध भी नहीं कर सकता। सियारामशरणजी ने संवदेनशील प्रतिबद्ध कवि की तरह निर्धनता के दृश्य प्रस्तुत किए हैं: दुख-शोक-सन्ताप, जीर्ण-शीर्ण-जर्जर घर, अबला का रुदन, रुग्ण पुत्र, भूखा सुत, टूटी खाट, फटी लंगोटी, हड्डी-हड्डी शरीर और इस सबके बीच रोटी के लिए चिल्लाता बेटा: माँ अब तो दे मुझे एक रोटी खाने को/भूख लगी है प्राण हो रहे हैं जाने को।

परिवार की दुर्दशा देखकर निर्धन मोहन अपना लोटा महाजन के यहाँ गिरवी

रखने जाता है। रास्ते में थोड़ा-सा चून पा जाता है तो सोचता है कि बच्चे मरने से बच जायगें। तभी वह चौकीदार द्वारा पुलिस थाना पहुँच दिया जाता है। दृश्य को गहराने के लिए कवि ने दिखाया है कि दरोगा और उसका कुत्ता भरपेट भोजन करते हैं और गरीब मोहन विषाद-डूबा है: कुत्ते तक भी सानन्द पेट भरते हैं/हमीं लोग जो अन्न विना मरते हैं/कुत्तों से भी हम लोग गये बीते हैं/धिक्कार हमें हम लोग तदपि जीते हैं। इस अवसर पर कवि रामधारीसिंह दिनकर की कविता का स्मरण हो आता है: श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं। इधर स्थिति यह कि मोहन की असहाय पत्नी यमुना पति के लौट आने की प्रतीक्षा करती है। एक पुत्र रोग से शय्याग्रस्त और दूसरा भूख से व्याकुल। तभी काबुली महाजन आता है और ऋण न चुका पाने के दण्ड रूप उसे पकड़कर ले जाता है। कैसी भयंकर त्रासदी है कि माता-पिता दोनों बंदी और घर में असहाय बेटे। मोहन थाना से छूटकर घर लौटते हुए फिर बेगार में पकड़ लिया जाता है। उसे दुखद सूचनाएं मिलती हैं कि यमुना को कोई ऋण के बदले में ले गया, रुग्ण बेटा मुरलीधर चल बसा और छोटा बेटा भूख से तड़प रहा है। मोहन इस व्यथा को सहन नहीं कर पाता और उसका प्राणान्त हो जाता है: फूट गया उसका सिर उससे बहने लगी रक्त की धारा/हुआ पुत्र का अनुगामी हा, वह अनाथ बेचारा।

आरंभिक रचना होते हुए भी 'अनाथ' काव्य का अपना महत्त्व है। सियारामशरण गुप्त के काव्य का एक स्वर राष्ट्रीय भावना और गाँधीवाद से जुड़ा है, तो दूसरा समय के यथार्थ से। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि समाजवादी व्याख्याकार हो जिसके आदर्शवाद का मोहभंग हो गया हो। 'अनाथ' का विन्यास यथार्थवादी है जहाँ गरीब मोहन हर प्रकार के शोषण से संत्रस्त सामान्यजन का प्रतिनिधि है। गाँव की सामन्ती व्यवस्था, जहाँ जमीदार-महाजन का राज्य है और शोषण का साथ देती साम्राज्यवादी नौकरशाही। मोहन विद्रोह नहीं कर पाता, यही उसकी असहाय स्थिति। असंगठित समाजों की दुर्दशा कवि जानता है, अथवा उसके चिन्तन पर गाँधीवादी दवाव है? सियारामशरणजी ने इस काव्य के माध्यम से सामान्यजन को अपनी सहानुभूति दी है और इसकी ध्वनि व्यापक है, आगे का संकेत करती हुई: लोहू-पसीना एक कर हम अन्न उपजाते यहाँ/पर वही अपना अन्न ही क्या हम कभी पाते यहाँ कुछ तो हड़प जाते हमारे सेठ-साहूकार हैं/बाकी बचे को छीन लेते हाय मालगुजार हैं। हे देशवालों तुम सता लो और जितना हो सके/यह याद रखना किन्तु तुम भी बच नहीं सकते कभी/बस एक घर की आग से ही गाँव जल जाता सभी। ऐसी ही करुण स्थिति का अंकन प्रेमचन्द ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' में गरीब किसान होरी के माध्यम से किया है। लगभग एक सौ छब्बीस छन्दों की इस रचना को लंबी

कथा-कविता कहा जाता है जिसे कवि ने करुण कहानी वाली त्रासदी के रूप में रचा है। यहाँ मोहन-यमुना के माध्यम से सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि ग्राम-कृषक जीवन की संघर्ष-गाथा प्रस्तुत की गई है।

पूरी कविता करुणा-विषाद पर आधारित है और शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति उपजाती है। कथा को इस प्रकार सहज मोड़ दिए गए हैं कि ट्रैजिडी गहराती चली जाती है और अन्त में कविता-नायक का ही अन्त हो जाता है-शेक्सपियर के ट्रैजिक पात्रों की तरह। 'अनाथ' में हम सियारामशरण के उदार संवेदन से परिचित होते हैं जिससे कविता की नयी संभावनाओं का आभास मिलता है। परिवेश को गहरे स्तर पर अनुभव करना और उसे मार्मिक अभिव्यक्ति देना, जिससे करुणा-सहानुभूति का संचार हो, इस काव्य की प्रमुख सफलता है। इससे हम सियारामशरण जी की काव्य-क्षमताओं के विषय में आश्वस्त होते हैं। कवि ने कल्पना की सहायता से दृश्यों को मार्मिक-प्रभावी बनाया है: प्राची दिशा में चन्द्रमा का उदय था 'अब हो चला/था अन्धकार अनन्त नभ का शीध्रता से खो चला/पर हाय उस हतभाग्य का तमपूर्ण हृदयाकाश था/उसको कहीं पर नाम को भी दीखता न प्रकाश था।

'मौर्य्य-विजय' और 'अनाथ' के अनन्तर रचना में थोड़ा अन्तराल है और 'दूर्वादल' का प्रकाशनकाल १९२४ ई. है। इसमें पैंतीस कविताएं हैं। इस समय हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य-छायावाद स्वयं को स्थापित कर रहा था। जयशंकर प्रसाद का झरना, आँसू; सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का प्रथम अनामिका; सुमित्रानन्दन पंत का पल्लव कविता-पुस्तकों का प्रकाशन दौर भी यही है। सियारामशरण के 'दूर्वादल' कविता संकलन की कविताओं के कुछ शीर्षक स्वच्छन्दतावादी छाया का संकेत करते हैं: भेंट, विश्वास, अभागा फूल, अनुरोध, मृत्यु-भय, कामना, गत दिवस, समीर के प्रति, घट, वीणा आदि, पर एक अन्तर है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में वैयक्तिक भावना का प्रकाशन उसे कभी-कभी किसी आध्यात्म-दर्शन की ओर भी ले जाता है। पर सियारामशरण की कविताओं में ईश्वर के प्रति आस्था से उपजी आस्तिकता मौजूद है जो पारिवारिक परम्परा से प्राप्त वैष्णव संस्कारों की उपज है। जहाँ तक छायावादी प्रभाव की बात है, विद्वानों ने द्विवेदी युग से जुड़े हुए कवि मैथिलीशरण गुप्त के सम्बन्ध में यह मत भी व्यक्त किया है कि हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य ने उनके काव्य को नयी भंगिमा दी। सियारामशरण गुप्त का 'दूर्वादल' कविता-संकलन कवि के नये प्रस्थान की सूचना है, इसमें संदेह नहीं।

'दूर्वादल' में कुल पैंतीस कविताएं हैं और उनका भाव-संसार कई प्रकार की प्रतिक्रियाओं से निर्मित दिखाई देता है। प्रथम कविता 'तुच्छ धूलि से बनी हुई' भूमिका-रूप में रचित प्रतीत होती है जिसमें धरती का वक्तव्य है। इसमें मेघ के प्रति उसका सहज कृतज्ञता-भाव निवेदित है। संभवतः इसकी रचना, संकलन के शीर्षक

का औचित्य प्रमाणित करने के लिए हुई है। धरित्री सम्पूर्ण मानवजाति का बोध कराती है और वर्षा के मेघ करुणा के प्रतीक। धरती कहती है: द्रवित हुए तुम बरस पड़े, बस सकरुण होकर/मैं कृतार्थ हो गई मलिनता अपनी धोकर। अगली कविता 'भेंट' में हृदय-कुसुम, सौरभ आदि से रूमानी भावना का संकेत मिलता है पर कविताओं में प्रभुवर, देव, प्रभु दुर्देव, शरण्य, परम पिता, करुणागार, विराट आदि से आस्तिकता का परिचय भी। इस प्रकार कविताओं का एक मिला-जुला संसार है जहाँ वैयक्तिक भावना, आस्तिक वृत्ति, प्रकृति प्रेम, जीवन-दृश्य के साथ तत्व चिंतन की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है।

'दूर्वा-दल' की कविताओं में सियारामशरण की जो आस्तिकी वैष्णव भावना है, उसमें वैयक्तिक मोक्ष अथवा समर्पण के स्थान पर नैतिकता और सामाजिक कल्याण का भाव अधिक सक्रिय है: पाकर उसकी ही सहायता सत्वर बिना प्रयास/विपद-सिन्धु हम तर जावेंगे है हमको विश्वास। कवि जीवन-जगत पर दृष्टि डालता है और संवेदन-स्तर पर जो प्रतिक्रिया होती है, उन्हें कविता-विषय बनाता है। चार-चार पंक्तियों की छोटी-छोटी कविताएं भी इसमें हैं और सम्बोधन के रूप में कई कविताओं की रचना हुई है। एक अन्तर्मुखता भी इनमें देखी जा सकती है जो द्विवेदी-युग की वर्णनात्मक प्रवृत्तियों से किंचित भिन्न है। यहाँ जो प्रार्थनाभाव, है वह भक्त कवियों जैसा रागात्मक नहीं है, जिसे 'प्रपत्ति' अथवा शरणागति कहा गया है, उसमें सदाशयता की कामना अधिक है: पावस में हे घनश्याम तुम नवजीवन ले आओगे।

प्रकृति का उपयोग और मानव से उसकी समीपता 'दूर्वादल' की कविताओं को स्वतंत्र व्यक्तित्व देती है, छायावाद के निकट लाती है। यहाँ कल्याण की सर्जनात्मक भूमिका है, जैसे कवि इस संसार के भीतर ही किसी दूसरे संसार की कामना कर रहा हो। कुछ स्थलों पर रहस्य-संकेत भी मिलते हैं पर वह कवि की मुख्य प्रवृत्ति नहीं है, यह तत्वचिन्तन के अन्तर्गत है। प्रकृति के माध्यम से अपने संवेदन को व्यक्त करना कवि का प्रतिपाद्य है जिसे जड़ता में चेतनता का आरोप भी कहा जाता है। 'समीर के प्रति' कविता का समापन छंद है: चलो आज उड़ चलें वहाँ उस देश में/दीखें सब जन जहाँ तुम्हारे वेश में। प्राकृतिक दृश्यों की मौलिक कल्पना कवि की सर्जनात्मक प्रतिभा का प्रमाण है: कोई मुग्धा तापस बाला/ मानों उत्फुल्ल सुमन-माला/निज कर-कंजों से कच संभाल/जल देती थी तेरे तल में/प्रतिदिन प्रभात के कल-कल में (वीणा)। तुलसीदास, पथ, बाढ़, वृद्ध, वर्ष प्रयाण जैसी अधिक पंक्तियों वाली कविताएं कवि की प्रबन्ध–क्षमता बताती हैं। संबोध-गीत अथवा 'ओड' के रूप में लिखी गई कविताएँ एक प्रकार का नया प्रयोग हैं। 'दूर्वादल' कवि के संवेदन संसार को गहराता कविता-संकलन है।

'विषाद' कविता-संकलन में पन्द्रह कविताएँ और इसका शीर्षक ही कवि की

मनःस्थिति का बोध करता है। सियारामशरण गुप्त की धर्मपत्नी का करुण निधन इसका प्रस्थान है: जहाँ जैसे भी थे जो फूल/हो गये आज चिता की धूल/हुई यह तन्त्री भी बेकार/अचानक टूट गये सब तार। सियारामशरण युवावस्था में ही थे कि उनकी पत्नी का देहावसान हो गया। इन कविताओं में कवि अपनी प्रिया का स्मरण कई रूपों में करता है-मधुर हास से लेकर प्रेमाभिसार तक। कवि उसके साथ मौनालाप से गुजरता है और उसे सम्बोधित भी करता है: चली गई हे शुभे, कहाँ तू हमसे कितनी दूर/किस अभाग्य की, किस अदृष्ट की दृष्टि हुई यह क्रूर/बहुत दूर तू चली गई बस है इतना ही ज्ञात/ पहुँच नहीं सकती है मुझ तक तेरी कोई बात (स्मृति)। प्रिया के चले जाने से सारे जीवन दृश्य शोक-संतप्त हैं: मार्ग में दुर्निवार घन तम, कम्पित वक्ष विकल, विह्वल मन आदि। मुझे अधीर/हृदय में कौन छेदता तीर। स्मृति 'विषाद' कविता-संकलन की मार्मिक कविता है जहाँ संबोधन शोकगीत का सहारा लिया गया है। जिस अपरिचित देश में प्रिया चली गई है, वहाँ कैसा क्या होगा: किस निर्जन उपवन में तेरा हुआ नवीन विकास/वहाँ झाड़ियाँ हैं अथवा है नव-नव सुमन विकास। कवि विषादपूरित है और प्रिया को चिरन्तन प्रेरणा के रूप में स्वीकार करता है जिसकी चर्चा प्रायः स्वच्छन्दतावादियों की रूमानी व्यथा के संदर्भ में की जाती है: कैसे भूला जा सकता है तेरा प्रणय प्रकाश/जीवन के प्रत्येक श्वास में है उसका आवास। निराला की दिवंगत सहधर्मिणी मनोहरादेवी चिरन्तर प्रिया हैं।

आर्द्रा (१९२७ ई,) को सियारामशरण गुप्त की प्रतिनिधि काव्य-कृतियों में स्वीकार किया जाता है। 'आर्द्रा' में तेरह कविताएं हैं जो किसी घटना को लेकर रची गई हैं। प्रायः आख्यान अथवा कथा-काव्य में इतिहास–पुराण का आश्रय लिया जाता है, पर सियारामशरण जी ने सामयिक संदर्भों को उजागर करने के लिए सामाजिक घटनाओं का उपयोग किया है जो स्वयं में एक प्रयोग है। इससे कवि के सुनिश्चित रचना-भविष्य की सूचना मिलती है। 'आर्द्रा' कवि के निश्चित काव्य-विकास का प्रमाण है और यहाँ कथा कहना उसका उद्देश्य नहीं। इस माध्यम में वह किसी विशेष काव्य-प्रयोजन की निष्पत्ति करना चाहता है जिस पर गाँधीवादी प्रभाव बहुत स्पष्ट है। इस प्रकार कवि मनोवांछित आशय की अभिव्यक्ति करना चाहता है। खादी की चादर, एक फूल की चाह, चोर, डाकू आदि कविताएं इसका प्रमाण हैं। उल्लेखनीय यह कि सियारामशरण ने उन विषयों को लिया जिन पर कविता लिखना बहुत सार्थक नहीं माना जाता था। प्रथम कविता 'हूक' कवि ने अपनी बेटी के आकस्मिक अवसान पर लिखी है और दूसरी कविता 'प्रयाणोन्मुखी' पत्नी की स्मृति को समर्पित है, जिसमें प्रिया का वक्तव्य है: आज एकाएक जाने के समय हो उठी है यह मही माधुर्यमय/किस करुण रस से, सुनीलाकाश भी उतरकर आ गया है, पास ही। एक शोकगीत के रूप में इसकी रचना हुई है।

'आर्द्रा' में किसी छोटे कथानक के माध्यम से ग्यारह ऐसी कविताएँ रची गई हैं जहां कवि की सोद्देश्यता मुख्य रूप से विचारणीय है। 'डाकू' में डाका डालने वाले डाकू का हृदय-परिवर्तन गाँधीवादी ढंग से होता है। यहाँ कवि गाँव का यथार्थ वर्णन करता है: और फिर देखी मैंने पौर लिपी थी गोबर से सब ठौर/धोतियों के थानों के चित्र/भीत पर चिपके से सुविचित्र/अलगनी के ऊपर कुछ म्लान/सूखते थे गीले परिधान। छोटी-सी बालिका को घर में देखकर डाकू को अपनी बेटी की याद हो आती है और वह चुपचाप लौट जाता है। 'नृशंस' कविता में घिनौनी दहेज-प्रथा पर आक्रमण है, जहाँ माता-पिता को चिन्तित देखकर अविवाहिता कन्या विष खाकर प्राण दे देती है। इस कथा-कविता में बाप, बेटी, माँ और अंत में फिर बाप के वक्तव्य हैं। पूरी कविता सामाजिक अभिशाप का करुण चित्र प्रस्तुत करती है। बाप का वक्तव्य है: तिल-तिल स्थान इस गेह का/रुधिर-प्रवाह तक अपनी ही देह का/ हो चुका है आज ऋणदाता का/कैसा अभिशाप है विधाता का। बेटी का वक्तव्य 'नृशंस' कविता में सर्वाधिक करुण है जहाँ वह सोचती है कि: माँ क्यों आज दिन-भर रोती रही/आँसुओं से अंचल भिगोती रही? वह जानती है कि विवाह की चिन्ता माता-पिता को कष्ट दे रही है क्योंकि वे वर खरीद सकने में असमर्थ है: सुनती हूँ बेच रहे बापू इस गेह को/छोड़कर जन्मस्थान के भी सुख-स्नेह को। मेरे घर! मेरे लिए होगा क्या पराया तू? छोड़ेगा हमारी मोह-माया तू?

अग्नि-परीक्षा साम्प्रदायिक संघर्ष पर आधारित है जिसमें सुभद्रा जलसमाधि लगाकर प्राण त्याग देती है। 'भोर' कविता में दयामयी विधवा पर व्यर्थ ही चोरी का लांछन लगाया जाता है और वह घर छोड़कर चली जाती है। 'डाक्टर' में लोभी डाक्टर की कथा है जिसमें एक निर्धन जलडूबी नारी को बचाने के लिए उसे बुलाया जाता है। पर वे नहीं जाते। कहानी के अंत में डाक्टर को पता चलता है कि वह उसकी पत्नी थी जो नाव से सहसा गिरकर डूब गई। 'खादी की चादर' लम्बी कविता है जिसमें विधवा चम्पा काशी में अपने परिजनों से अलग छूट जाती है और अपनी बच्ची को लेकर भटकती है। एक पंडितजी उसे घर ले जाते हैं जहाँ बच्ची की मृत्यु हो जाती है। कवि ने विधवा चम्पा का करुण विलाप यहाँ विस्तार से चित्रित किया है: कौन लोक में पहुँच चुकी तू पता नहीं/ हा गई कहाँ तो फिर क्यों फिर-फिर आ-आकर झूल दृगों में रही यहाँ? चम्पा चरखे पर सूत कातती है, उसके पैसों से दूध खरीदकर गंगा-तट पहुँचती है और उसे अपनी दिवंगत बच्ची को समर्पित कर देती है। कविता एक करुण प्रश्न छोड़ जाती है: ऊपर उठकर ताक रही थी समुदित नव शशि की लेखा/चम्पा कहाँ गई फिर तब से नहीं किसी जन ने देखा।

'एक फूल की चाह' 'आर्द्रा' कविता-संकलन की सबसे प्रभावी कविताओं में है जिसकी प्रेरणा गाँधीजी का हरिजन-उद्धार कार्यक्रम है। इसमें एक हरिजन की बच्ची

सुखिया महामारी के प्रकोप में ज्वरग्रस्त हो जाती है। वह बार-बार कहती है: मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर। पर हरिजन को मन्दिर में कौन प्रवेश करने देगा? यह प्रश्न है। वह कई प्रकार के फूल ला-लाकर बेटी के पास रखता था, पर उसे देवी के प्रसाद का फूल ही चाहिए था। हरिजन प्रार्थना करते हुए मन्दिर के द्वार तक पहुँचता है। उसका कथन है: 'मैं अछूत हूँ तो क्या मेरी विनती भी है हाय अपूत। भक्तजन मन्दिर की ओर बढ़ रहे हैं और उसे देखकर कहते है कि यह अछूत कैसे भीतर आ गया। मार खाते हुए भी उसने प्रार्थना की कि बेटी अस्वस्थ है कोई उसे देवी के प्रसाद का फूल ले जाकर दे दे। हरिजन को न्यायालय से सात दिन का दण्ड मिला। और जब वह घर पहुँचता है तो देखता है कि बेटी के प्राण पखेरु उड़ चुके हैं। वह अग्नि को समर्पित हो चुकी है। कविता के अन्त में वही पंक्ति है: मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर।

'एक फूल की चाह' की प्रेरणा निश्चित ही महात्मा गाँधी का हरिजन-उद्धार प्रयत्न है। पर सियारामशरणजी ने इसे काव्य-मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करने में सफलता पाई है। 'मुझको देवी के प्रसाद का एक फूल ही दो लाकर' इस कविता का गीत-भार है। यहाँ कवि वर्णनात्मकता की चौहद्दी तोड़ता हुआ, संक्षिप्त कथा को संवेदन के स्तर पर प्रस्तुत करता है। बेटी की रुग्णावस्था है: कोमल, कुसुम-समान देह हा, हुई तप्त अंगारमयी; छोटी सी बच्ची को ग्रसने, कितना बड़ा तिमिर आया। हरिजन का प्रार्थना-भाव भी बेटी के लिए है: हे मात:, हे शिवे, अम्बिके, तप्त ताप यह शान्त करो निरपराध छोटी बच्ची यह, हाय! न मुझसे इसे हरो। अपनी बेटी की प्राण-रक्षा के लिए ही वह मन्दिर जाने का संकल्प लेता है। उसका व्यक्तित्व वात्सल्य-परिचालित है। घर लौटकर जब बच्ची को नहीं पाता तो उसकी पीड़ा है: अन्तिम बार गोद में बेटी, तुझको ले न सका मैं हा। पूरी कविता गहरा करुण प्रभाव छोड़ती है और हमारी व्यवस्था पर तीखा प्रहार करती है, जहाँ ईश्वर के बेटों में भी अन्तर किया जाता है। व्यंग्य है: कैदी कहते-अरे मूर्ख क्यों, ममता थी मन्दिर पर ही? पास वहीं मस्जिद भी तो थी, दूर न था गिरजाघर भी।

सियारामशरण गुप्त के पूर्ववर्ती काव्य-चरण में 'आर्द्रा' कविता-संकलन का विशेष महत्व है। इससे कवि के सुनिश्चित प्रौढ़ काव्य-भविष्य की सूचना मिलती है। यहां कथा-अंश के माध्यम से कवि ने अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक भावना को संवेदन-स्तर पर व्यक्त किया है जिसे गाँधीवाद का काव्य संस्करण कहा गया है। इसे आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'भावुकतापूर्ण आख्यान गीत' कहा है। करुणा इस संकलन का मुख्य तत्व है जिसके माध्यम से सियारामशरणजी पाठक को भीतर तक उद्वेलित करना चाहते हैं। यहाँ द्विवेदी युग की नीरस नैतिक सुधारवादी दृष्टि के स्थान पर अधिक मार्मिक अभिव्यक्ति का सहारा लिया गया है। डा. निर्मला जैन ने इसे सरल गति का सहज प्रवाह कहा है। 'आर्द्रा' का कवि संवेदन और कल्पना के संयोजन से उस काव्य-भूमि पर पहुँचता है जहाँ अपने मनोवांछित आशय का प्रकाशन

वह पूरी मार्मिकता से कर सकता है।

आत्मोत्सर्ग, पाथेय और मृण्मयी सियारामशरण गुप्त के पूर्ववर्ती काव्य-चरण की अन्तिम कृतियां हैं। 'आत्मोत्सर्ग' में श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के बलिदान की कथा है जो साम्प्रदायिक संघर्ष में शहीद हो गये थे। इसकी संक्षिप्त भूमिका में महात्मा गाँधी ने लिखा है: 'श्री गणेशशंकर विद्यार्थी एक मूर्तिमान संस्था थे। ऐसे मौके पर उनकी मृत्यु का होना एक बड़ी दुःखद बात है, परन्तु यह उनके योग्य ही था कि वे हिन्दू और मुसलमानों का, एक दूसरे का सिर तोड़ने से उन्हें बचाते हुए मरे।' तीन खंडों की इस कविता का मुख्य आशय हिन्दू-मुस्लिम भाई-चारा पर बल देना है जो गाँधीजी का प्रिय विषय था और जिसके लिए वे शहीद हो गए। 'आत्मोत्सर्ग' की कथा वर्णनात्मक ढंग से आरम्भ होती है पर गणेशशंकर विद्यार्थी यहाँ बहुत चिन्ताकुल हैं: किस कुयोग-वश नव वसन्त में यह घनघोर घटा आई? कवि साम्राज्यवाद को सब बुराइयों का कारण मानता है और भगतसिंह के बलिदान का सादर स्मरण करता है।

गणेशशंकर विद्यार्थी को जब ज्ञात होता है कि: फोड़ रहे हैं सिर आपस में हिन्दू मुस्लिम लड़कर, तो दोनों को शान्त करने चल पड़ते हैं। वे कहते हैं: मन्दिर में जो, मस्जिद में भी/ज्योति उसी की है फैली। पर संघर्ष शान्त नहीं होता, आग बढ़ती ही जाती है। विद्यार्थीजी अपने कुछ साथियों के साथ इस ज्वाला को बुझाना चाहते थे। सियारामशरणजी ने साम्प्रदायिक मार-काट का वर्णन विस्तार से किया है जिससे स्थिति की भयावहता का पता चलता है: अरे आज क्या हुआ विपर्यय/क्या अब होगा नहीं प्रभात? अल्पसंख्यकों के साथ गणेशशंकर जी की विशेष सहानुभूति है और वे उन्हें समझाने-बुझाने का प्रयत्न करते हैं ताकि दंगा-फसाद समाप्त हो। कवि ने विद्यार्थीजी के लंबे वक्तव्यों का उपयोग किया है जिससे उनकी गाँधीवादी विचारधारा का स्वरूप स्पष्ट होता है: हिन्दू-मुसलमान दोनों ही, एक डाल के हैं दो फूल। जनता को गणेशजी में विश्वास है कि वे उनके रक्षक हैं। पर धर्मोन्माद में उनके प्राणों की बलि हो जाती है। सियारामशरणजी ने गणेशशंकर विद्यार्थी के बलिदान के माध्यम से गाँधीजी के प्रिय विषय ''जातियों का भाई-चारा' की स्थापना की है। इस प्रकार का यह अभिनव प्रयत्न है और आज भी प्रासंगिक।

'पाथेय' सियारामशरण गुप्त के प्रतिनिधि कविता-संकलनों में है और इससे कवि की विविध मनोदशाओं का परिचय मिलता है। यहाँ वह कई दिशाओं में अग्रसर होना चाहता है, वर्णनात्मकता पीछे छूट जाती है और कवि जीवनजगत के विषय में सोच-विचार करता है जिसे हम जिज्ञासा भाव का विकास कह सकते हैं। 'पाथेय' में चौवालिस कविताएं हैं: 'प्रणाम' से लेकर 'विदा के समय' तक। पहली कविता 'प्रणाम' अग्रज मैथिलीशरण गुप्त के प्रति आदर-भाव के रूप में रची गई है। 'पाथेय' के अतिरिक्त अन्य कविताओं के शीर्षक भी छायावादी प्रभाव का संकेत करते हैं: उत्सुक, उन्मुक्त, अविराम, आदान-प्रदान, क्षणिक आदि। पर एक अन्तर है।

सियारामशरण दृश्यों के प्रति चिन्तन-दृष्टि अपनाते हैं और अपने भाव व्यक्त करते हैं जिसे अंग्रेजी की 'मेटाफ़िज़िकल' कविता कहते हैं। इसीलिए कई कविताओं में संबोधन-गीत का सहारा लिया गया है: कवि और अन्य के बीच सीधा वार्तालाप। पूजन, अविराम, दुर्वार, आदान-प्रदान, परदेशी, परस्पर आदि कई कविताएं संबोध-शिल्प में रची गई हैं।

'पाथेय' सियारामशरण के काव्य के उस मोड़ की सूचना है जहाँ कवि जीवन-जगत को अपने ढंग से देखता-समझता और उस पर सोच-विचार करता है। इस चिन्तनशीलता में कवि की वैष्णव भावना भी सम्मिलित है। ये कविताएं रहस्यवाद की ओर भी मुड़ सकती थीं, पर सियारामशरण अपने समय की सामाजिक चेतना, विशेषतया राष्ट्रीय भावना से घनिष्ट रूप में सम्बद्ध हैं और इसलिए वे कहते हैं: मेरे तन में नव-स्फूर्ति का ज्वार उठा नूतन तर/मर सकता हूँ बार-बार में ऐसे नव जीवन पर (नेत्रोमीलन)। माखनलाल चतुर्वेदी की कविताएं कुछ स्थलों पर जिस नव-अध्यात्म का संकेत करती हैं, उसके मूल में यही जिजीविषा और मानवीय सम्पृक्ति है। सियारामशरण ने प्रकृति का उपयोग प्रकृतिवर्णन के लिए कम पर अपने चिन्तन-प्रकाशन के लिए अधिक किया है। वर्ड्स्वर्थ की तरह वे कुछ निष्कर्ष पा जाते हैं जिन्हें कवि का तत्व-चिन्तन कहा जा सकता है। 'आह्वान' कविता में उस तप की भूमिका का उल्लेख है जिससे वर्षा का जन्म होता है: सुनो सुनो आ पहुँचा हूँ मैं पावस केतु-वाह आषाढ़/बोलो आज कौन क्या देगा, अपना तप परिपूर्ण प्रगाढ़। वैशाख-ज्येष्ठ को कवि ने 'पावस का अग्रदूत' कहा है जिसकी ध्वनि यह कि तप की अपनी गरिमा है।

सियारामशरण गुप्त मनुष्य, प्रकृति, स्थिति, दृश्य आदि के विषय में अपने मानस में प्रतिक्रियाएं जन्माते हैं और उन्हें कविता में अभिव्यक्ति देते हैं। पर्वत, जल सभी कवियों के प्रिय रहे हैं और दिनकर ने 'मेरे नगपति मेरे विशाल' जैसी ओजस्वी कविता लिखी है जिसके माध्यम से राष्ट्रीय भावों को व्यक्त किया है। पर सियारामशरण 'बीच में' कविता में गिरिवर पर उपत्यका में एक नव यात्री की कल्पना करते हैं। उसके दृश्य बनाते हैं: सुचिर कुमारी की पावन-श्री, उसके मुख पर मृदुतर/रहती है वह उच्च अट्ट पर, शत-शत खंडों के ऊपर। किन्तु उनका चिन्तन सजग है: जागृत है यात्री-जागृत है, सुप्रभात आल्हाद स्वरूप/चमक उठी फिर गिरिचूड़ा वह, अरुण-हास में अतुल अनूप। 'एक बूंद' में उनकी याचना है: मेरे पुलक स्वाति के घन हे, पूरा कर मेरा अभिलाष। रत्नराशि में वे प्रेम की आभा देखते हैं (रत्न की आभा) और 'तिमिरालोक' में तारों का ध्रुव-प्रभा-पुंज। प्रकृति में आशय खोजने के लिए सुमित्रानंदन पंत की एक तारा, नौका विहार आदि कविताओं का उल्लेख प्रायः किया जाता है और सियारामशरण ने प्रेरणा पाई हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

'पाथेय' में सियारामशरण के नव उत्साह की कविताएं है जहाँ वे जिजीविषा को मजबूती से पकड़ते हैं। 'तिमिर-पर्व' कविता आशा-उल्लास से पूर्ण है: तिमिर-पर्व में आज नहाकर पूर्ण हुआ उल्लास। वे 'नवजीवन' का स्वप्न देखते हैं, कहते हैं: जब तक यह पानी है मुझमें, और नाच लूं मैं यों ही। इसी जिजीविषा भाव से वे जीवन में गहराई से प्रवेश करते हैं और उनके कुछ निष्कर्ष विचारणीय हैं: बंधु तुझे कंटक समझा था, पर तू तो निकला फूल (अनुकूल), कंटक तुझे होगा जो पीड़ा बोध/वही तेरे पथ-ऋण का शोध (समाधान), उज्ज्वलित होता रहा, अच्छा हुआ/दीप बोला जागना मेरा सफल (स्नेह-रीति), कुटिल-कटीले झंखाड़, पर इन्हीं में नूतन मार्ग बनाना है (यात्री) आदि। प्रौढ़ता पर पहुँचा हुआ कवि जीवन के विषय में जिस गहराई से विचार करता है, 'पाथेय' की कविताएं उसका प्रमाण हैं। इन पर कवि रवीन्द्र की भी छाया देखी जा सकती है।

जिजीविषा, चिन्तन, आशा-भाव 'पाथेय' कविता-संकलन की मुख्य प्रवृत्तियां हैं। कवि आत्म-विस्तार में एक चरण आगे बढ़ता है: जाकर देखूं मुक्त भवन में/पथ, प्रान्तर, पुर, निर्जन वन में (उत्सुक)। वह आलोक, आकाश, समीर से जुड़ता है: आहा यह आलोक उदार/इस उर के शतदल विकसाकर/करता है स्वच्छन्द विहार अथवा आहा यह आकाश अपार/अक्षय कवच हुआ है मेरा/दिग्दिगन्त तक दीर्धाकार (उन्मुक्त) अथवा हे निकुंज स्निग्ध सरस तेरी छाया (अविराम)। कविताएं किसी अनन्त का बोध कराती हैं जिन्हें आत्मा-परमात्मा के संबंधों के रूप में भी देखा जा सकता है, पर वह कविता का मूल प्रस्थान नहीं है, प्रकारान्तर ध्वनि है। सियारामशरण की जिजीविषा अपने प्रिय विषय पर आती है। गाँधीजी को समर्पित कविता है जिसमें उन्हें 'विप्लव का हुंकार' कहा है: सत्य, अहिंसा निखिल प्रेम में/गूंज उठा तेरा जय गान। संकलन की दो कविताएं शंखनाद और वीरवन्दना में राष्ट्रीय भावना है जो कवि का प्रिय विषय है। 'शंख-नाद' राष्ट्रीय भावना के प्रखर कवियों का स्मरण दिलाती है, विशेषतया राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का: कुछ भी मूल्य नहीं जीवन का, हो यदि उसके पास न ध्वंस। 'वीर-वन्दना' अपेक्षाकृत लंबी कविता है जिसमें अजाने वीरों (अननोन सोल्जर्स) को प्रणाम किया गया है। इस अवसर पर मुक्तिबोध का स्मरण हो आता है: नाम कमाने के लिए कोई फूल नहीं खिलता है। 'वीर-वन्दना' की पंक्तियां हैं: तुम अपने प्रति पद-क्षेप में, चिन्हित कर निज छाप/नवतीर्थों की नवस्थापना करते गये अलाप।

पूर्ववर्ती काव्य-चरण की अन्तिम रचना 'मृण्मयी' है जिसके शीर्षक से कवि सियारामशरण की जीवन-सम्पृक्ति का परिचय मिलता है। यों मृण्मयी अथवा माटी निर्मित शीर्षक से संकलन में कोई कविता नहीं है, पर प्रायः सबमें माटी का संस्पर्श विद्यमान है। इसमें ग्यारह कविताएँ हैं-प्रायः आख्यान का सहारा लेती हुई, जिन्हें लंबी

कविताएं भी कहा जा सकता है। संकलन का समर्पण कवि-अग्रज को है, उनके जन्मदिवस सावनतीज पर। प्रथम कविता 'रज-कण' पर्वत को सम्बोधित है जहाँ कवि ने उसकी विराटता को स्वीकारा हैः अचल मौन साधक, अडिग, विराट वपु आदि। कवि पार्वतीय वैभव को प्रेरणा रूप स्वीकारता है और गिरीश के माध्यम से पृथ्वी की महत्ता प्रतिपादित करता है। निर्झरिणी का कीर्तन, वाणी का गुरु गौरव, अर्थभरित मौन, अन्तस संवाद, अमल स्रोत, धवल गिरा पर्वत शिखर की यशोगाथा हैं। कवि का नया रूपान्तरण होता हैः निखर गई जड़ता जन-मन की, तरल तरंगित जीवन में/रहे मौन तू, तेरी वाणी गूंज रही यह वन-वन में।

'मृण्मयी' में कथा-अंश के माध्यम से सियारामशरण ने किसी काव्य-मन्तव्य का प्रकाशन किया है और यहाँ कथा कहना उनका अभिप्राय नहीं है। इस दृष्टि से वर्णनात्मकता तथा कथा-आग्रही कविता को अस्वीकारते हुए वे जयशंकर प्रसाद आदि कवियों की परम्परा का पालन कहते हैं जिन्होंने 'कामायनी' जैसे काव्य में भी रूपक का सहारा लिया है। 'मृण्मयी' की 'लाभालाभ' कविता में नगरश्रेष्ठी नरवाहन दत्त अपने विशाल भवन का निर्माण कराता है जो अचानक धराशायी हो जाता है और उसी के साथ उसकी स्वर्णराशि भी। संभवतः अर्थवादी लिप्सा का निषेध इस कविता का प्रयोजन है। अवर्षा से आरंभ होती 'मंजुघोष' कविता में तप की महिमा का बखान हैः तप तपती है, यह माता मही। तब वृष्टि होती है। अकाल का प्रभावी वर्णन हैः दूर तक अन्तरिक्ष-जाल में पावन पयोघरों का चिह्न नहीं/शून्य बस शून्य ही सभी कहीं/देख आ रहा हूँ दीन कृषिकारों को/खेतों बीच धान्यांकुर-आग के अंगारों को/सन्निकट-वत्स-शोक-भीतिपरा धूलि भरी जननी वसुन्धरा। कवि जीवन में तप की महत्ता प्रतिपादित करता है। धरती वैशाख-जेठ में तपती है तब आषाढ़ की वर्षा आती है। शिल्पी विश्वकर्मा की अपूर्व, अनुपम श्रमसाध्य कृति है - पावन नगाधिराज, जो स्वयं साधाना-तपस्यारत हैं। संभव है इसमें महाकवि कालिदास की भी प्रेरणा हो। कविता में प्रकृति के मनोरम दृश्य हैं, विशेषतया शैलराज के। अन्त में तप से वर्षा आती हैः देखो सुखस्नात यह वसुधा/ बरसा गये हैं मंजुघोष मेघ स्वर्ग-सुधा/सूखे खेत फिर लहराते हैं/ घर-घर प्रसन्न सब हर्ष-गान गाते हैं।

कथा-अंश किसी तत्व-चिन्तन का प्रतिपादन करते हैं, काव्य स्तर पर, जिसे मुक्तिबोध ने ज्ञान और संवेदन की मैत्री कहा है। इसलिए सियारामशरण 'पाथेय' में भाषण, वक्तव्य अथवा मसीहाई मुद्रा से बच जाते हैं। 'नाम की प्यास' कविता में यशक़ामना को भी सही नहीं माना गया है। नीर सबको अपने पास बुलाता है, पर एक धनी नाम की कामना से कुआँ खुदाता है, जल नहीं निकलता, फिर भी नामपट्टिका लगवा देता है। लोग आते हैं, निराश होते हैं। कूप का माया–प्रंपच कहकर उसे पाट देते है, शिलालेख उड़ जाता है और तभी जल-प्रवाह। कविता में जल का

मानवीकरण किया गया हैं: सीधी है सपाट मही/किन्तु देखने को क्या यही/डालो दृष्टि और कुछ गहरी/निर्मल सुनीर यह पाओगे/पाप-तृषा भूल सब जाओगे/उछल उठेगी मंजु मानस की लहरी। 'छल' कविता में समुद्र का नील पारावार है जहाँ व्यक्ति तीर्थस्नान करने के प्रयत्न में डूबने लगता है पर अंत में बच जाता है। टिप्पणी है: वक्ष तक वारि लहराता था/ तैर तैर उथले में व्यर्थ मरा जाता था। सागर में छल-छल/मेरे उर में था शुद्ध कल-कल/जीवन में जीवन नया-सा भरा आता था। एक नया रूपान्तरण। 'ग्वालिनें' छोटी कविता है जिसकी प्रेरणा कृष्णकाव्य है जहाँ ग्वालिन प्रिय कृष्ण की स्मिति को निधि मानती है, जैसे उसने सब कुछ पा लिया। 'सम्मिलित' कविता में अमलतास और रसाल के माध्यम से बैर, कलह का विरोध है, जिसका व्यापक मानवीय स्वर है।

'अमृत' लंबी कविता है जिसकी कथा पौराणिक प्रसंग समुद्र-मंथन से ली गई है। महामृत्यु से देव-दानव दोनों भयभीत हैं और अमृत प्राप्त करने की इच्छा से दोनों विरोधी कुछ समय के लिए एक हो जाते हैं। वे समुद्र मन्थन के लिए तत्पर होते हैं और विडम्बना यह कि कहते हैं- अमृत के लिए फिर संघर्ष कर लेंगे। कवि ने धरित्री का सुन्दर वर्णन किया है: सुन्दरि, अयि कल्याणि, शुभंकरि, तेरी छटा अनूप। कविता के अंत में: पान कर लिया शिव शंकर ने, कालकूट निश्शेष। और कवि की टिप्पणी है: जिसे हलाहल समझा हमने/अमृत वही था सत्य। सियारामशरण का कांव्य-आशय है कि विषपान ही अमृत है, संघर्ष ही जय है, तप सिद्धि है। यह कविता शाश्वत प्रश्नों पर विचार करती है: जीवन-मरण यमज सोदर हैं, दोनों हैं समकाय; काल अहा यह भी प्रिय शिशु सा, निमिष मात्र दिन-रात, अमृत यहाँ लेने आए थे, हुआ मरण-विष प्राप्त आदि। कविता छायावादी शिल्प के समीप है: किस मदिरा का मधुर फेन यह इन अधरों का हास/दिशा-दिशा में, कोण-कोण में, दीपित यह मधुमास। 'अमृत' कविता कल्पना की नयी उठान का साक्ष्य है और अभिव्यक्ति का प्रौढ़ चरण।

'पुनरपि' कविता का आरंभ प्रकृति-दृश्य से होता है: नील-कान्त गिरि-शिखर, तले सम-विषम धरा पर/तरला स्रोतस्विनी जा रही थी हहरा कर। एक वन्य बालक के पास पारस मणि है जिससे विदेशी पथिक लुब्धक की छुरी सोना बन जाती है। लोभी व्यक्ति वह पारस पथरी बालक से छीनकर, उसे जलमग्न कर देता है। पर वह वन्य/आदिवासी बालक जैसे उसकी चेतना पर छाया रहता है। वह निरन्तर आशंकाओं में रहता है कि कहीं कोई पारस पत्थर छीन न ले जाय। वह घर जाकर पत्नी को सारी बात बताता है और कहता है अब वैभव ही वैभव होगा। पर विषादग्रस्त हो जाता है जब पारस पत्थर लोहे को फिर स्वर्ण बना सकने में असमर्थ हो जाता है। लुब्धक सच्चे पारस की तलाश में सब जगह भटकता है। तभी उसे लगता है जैसे

फिर वही बालक आया है। वह उसकी मुट्ठी से पारस पत्थर ले लेता है, यह सोचकर कि वह सच्चा है। कविता का अन्त है: धम-से बालक गिरा कगारे पर से जल में/लुप्त हो गया पथिक भागकर विजन स्थल में। इस कविता में इच्छाजन्य निर्ममता का चित्रण हुआ है: पर-वैभव-असहिष्णु, निरन्तर पर-सन्तापी। मनुष्य ही मनुष्य का शत्रु है: पशु से भी बच जाय, बचा है कौन मनुज से/आह मनुज के लिए मनुज है क्रूर दनुज से। यहां अमानुषीकरण पर टिप्पणी है।

'भोला' सामान्यजन है जिसने कभी आखेट करने आए राजा की, शूकर से रक्षा की थीं। राजा उसे पुरस्कार देने के लिए बुलाते हैं तो भोला परसू की मां को देने के लिए बस एक रुपया मांगता जिसे वह काकी कहता है। गरीब काकी ने अपने बेटे के लिए देवता की पूजा बोल रखी थी। राजा को नया बोध होता है कि वह किसी के काम आया। इस कविता में भोला के मानवीय चरित्र को उभारा गया है, जो आत्मनिर्भर है: 'और फिर भोजन, कमी क्या वहां इसकी/हाथ में हमारे जब अपना धनुष हो'। कहते हुए यों आत्मसुख के प्रकाश से/हो उठा प्रदीप्त मुख भोला का, भवन की/राज-सुषमा के बीच।

'खिलौना' इस संकलन की अंतिम कविता है जो है तो छोटी, पर गहरा संकेत करती है। एक राजकुमार बालक है और दूसरा निर्धन दीना का बेटा जो क्रमशः अपने-अपने स्वर्ण और माटी के खिलौनों से सन्तुष्ट नहीं हैं। वे एक-दूसरे का खिलौना चाहते हैं: मैं तो वही खिलौना लूंगा, मचल गया शिशु राजकुमार। सियारामशरण गुप्त स्वर्ण और माटी के माध्यम से एक ओर बालपन की निश्छलता का बोध कराना चाहते हैं तो दूसरी ओर यह टिप्पणी भी कि विचित्र स्थिति है कि जो जिसके पास है, वह जैसे उससे पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं, और कुछ चाहता है।

'मौर्य्य-विजय' से लेकर 'मृण्मयी' तक का प्रथम काव्य चरण सियारामशरण के काव्य-विकास की सूचना देता है। वर्णनात्मकता धीरे-धीरे कम होने लगती है और वे कथा का उपयोग अपने मनोवांछित आशय के लिए करते हैं जिसमें उच्चतर मानवीय सदाशयता है। मनुष्य कवि की चिंता का केन्द्र बनता है। प्रायः कहा जाता है कि सियारामशरण पर राष्ट्रीय भावना के साथ गाँधी के प्रभाव की बहुलता है। विचारणीय है कि आरंभ में गाँधीवाद की रूपरेखाएं थीं, पर धीरे-धीरे यह दर्शन काव्य-संवेदन का एक महत्त्वपूर्ण अंश बनकर आता है जिससे कविता नयी उठान लेती है। राष्ट्रीय भावना, देश-प्रेम को संवेदन स्तर पर काव्य में अभिव्यक्ति देने का सराहनीय कार्य मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि ने किया है और सियारामशरण गुप्त इसी परम्परा के उल्लेखनीय कवि हैं। 'वीर-वन्दना' की पंक्तियाँ हैं: अहो तरुण, हिम-ताप-वृष्टि सब, सहकर भी द्युतिमन्त/प्राचीना पृथ्वी के यौवन/हो तुम सरस-वसन्त।

सियारामशरण गुप्त ने द्विवेदी युगीन सुधारपरक नैतिकता से अपनी यात्रा का आरंभ किया था, पर क्रमशः हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, छायावाद ने भी उन्हें अभिव्यक्ति की नई प्रेरणा दी। उन्होंने प्रकृति और मनुष्य के संयोजन का प्रयत्न किया जिसे जड़ता में चेतनता का आरोप, मानवीकरण आदि भी कहा जाता है, उसके सघन चित्र बनते हैं जिसमें प्रकृति को कोमल-कठोर दोनों रूप आए हैं। जीवन-यथार्थ का सम्पर्क कवि को नयी ऊर्जा देता है। अकाल-दृश्य है: अंकुर नये-नये/निकल पड़े थे धरा के अंक-थल में/जननी के अंचल में/ कान्त शुचि शिशु की मनोज छवि छाए हुए/पवन-करों से दुलराए हुए/हर्षामोद-आन्दोलित थे जो पल-पल/में आज वही सहसा अकाल में/सूखने लगे हैं तात/पीले पड़ गए गात। सियारामशरणजी में प्रगीतात्मकता का प्रवेश होता है और उनकी अभिव्यक्ति संग्रथित होती है। कल्पना की नयी छवियां काव्य में आती हैं और यह कवि का नया सर्जनात्मक प्रयाण है : मानों छल-छल सान्ध्य स्वर्ण में अंचलभरिता/ऊपर उठकर शोध रही थी निज पथ सरिता।

# काव्य : द्वितीय चरण

सियारामशरण गुप्त का परवर्ती-काव्य-चरण १९३७ ई. से १९६३ ई. तक स्वीकार किया जा सकता है। इसमें बापू (१९३८), दैनिकी (१९४२), नकुल (१९४६), नोआखाली (१९४७), जयहिन्द (१९४७), सुनन्दा (१९५६) तथा अमृतपुत्र (१९५९) को लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त दो काव्य-नाटक उन्मुक्त (१९४०) तथा गोपिका (१९६३) की रचना भी इसी दौर में हुई। आर्द्रा, पाथेय जैसे पूर्ववर्ती काव्य सियारामशरण की प्रौढ़ कविता क्षमता का बोध कराते हैं और परवर्ती काव्य-चरण जैसे उसी का उत्तरोत्तर विकास है। अनुरूपा (१९८९) प्रतिनिधि कविताओं का संकलन है।

'बापू' काव्य एक प्रकार से महात्मा गाँधी के प्रति कवि सियारामशरण गुप्त की श्रद्धा-भावना की अभिव्यक्ति है। आरंभिक छंद में बापू को कर्म से सम्बद्ध किया गया है : वाणी के मन्दिर में आकर कर्म स्वयं झंकृत हैं आज/गिरा अर्थ से, अर्थ गिरा से सादर समलंकृत है आज। ये पंक्तियाँ तुलसी के रामचरितमानस का स्मरण कराती हैः गिरा-अर्थजल-बीथि सम, कहियत भिन्न न भिन्न। कवि ने बापू के लिए कुछ विशिष्ट संबोधनों का प्रयोग किया हैः कृती, कार्यव्रती, पुण्य सूर्य, विजय-घोष, आत्ममणि, पारदर्शी, मुक्त-ह्रास, तपस्वी, एकनिष्ठ, विशिष्ट ज्ञान-गारिमा, श्रेष्ठरथि, विदेह आदि। इससे कवि के श्रद्धा-भाव का पता चलता है। सियारामशरणजी ने महात्मा गाँधी को बुद्ध-महावीर, ईसा-मुहम्मद की पैगम्बरी परम्परा में रखकर देखा है—साधारण होकर भी असाधारण और विशिष्ट, फिर भी सामान्यजन के समीपी।

सियारामशरण गुप्त का 'बापू' काव्य केवल प्रशस्ति-गान नहीं है। इसके माध्यम से कवि राष्ट्रीय गौरव, विश्व-बन्धुत्व को भी रेखांकित करना चाहता है। गाँधी का आगमन ऐसा जैसे नया सूर्योदयः आई अहा मूर्ति वह हँसती/जैसे एक पुण्य रश्मि स्वर्ग से उतर के/अन्धतमः पुंज छिन्न करके/दीख पड़ी अन्तस के अन्तस में धंसती/आत्ममणि का-सा पारदर्शी पात्र/दृष्टि हेतु गात्र उपलक्ष मात्र/भीतर की ज्योति से छलकता/रजनि-उपान्त नभ जिसमें झलकता/कान्त-रुचि/गल प्रभात काल शान्त शुचि। भारतीय राजनीति में बीसवीं शताब्दी का चौथा दशक गाँधी युग का चरम क्षण माना जाता है- इसी के अनन्तर अगस्त क्रांति और फिर स्वाधीन भारत। गाँधी ने निराश समाज में नयी आशा का संचार किया, हीन भावना से उबारा, समाज को संगठित किया, उसे नयी दिशा दी—जैसे अंधकार में प्रकाश का आगमनः आये, उठ

हर्ष रव/हो गए प्रफुल्ल मुख-पद्म जन-जन के। इसे कवि ने 'नित्य का प्रभात, मुक्त महोल्लास, नन्दित अनन्त में विभास, चिरकालिक प्रभाकर आदि कहकर सम्बोधित किया है। बापू भारत के सामान्यजन के मसीहा हैं, उनकी चिन्ता 'दरिद्रनारायण' है।

प्रश्न यह कि बापू ने असंभव को संभव कैसे किया? साम्राज्यवादी निर्मम शक्ति पर वे विजयी कैसे हुए? एक वर्ग सशस्त्र क्रांति का समर्थक था, पर गाँधी जानते थे कि असंगठित समाज की कई सीमाएं हैं। उन्होंने सत्याग्रह-अहिंसा का दर्शन दिया जिसकी व्याप्ति राष्ट्रीय स्वतंत्रता से आगे जाकर विश्वबंधुत्व तक है। वे शान्ति दूत हैं: तापस, तुम्हारे मन्त्र-पूत तपोवन में/ पुष्प निकेतन में/आमोदित होम-धूप हो रहा तिमिर जाल/सुप्त सर्व-भूत-निशा/हो रही जागृति की पूर्व दिशा। सियारामशरण गुप्त ने वैष्णव परम्परा में गाँधी की परिकल्पना नर-नारायण रूप में की, अर्थात् व्यक्ति अपने सत्कर्म से ईश्वरत्व तक पहुँचता है-पुरुषोत्तम रूप में। 'बापू' काव्य की विशेषता यह कि यहाँ कवि गाँधीवाद की संवेदन-अभिव्यक्ति का प्रयत्न करता है, जिसे भाव-विचार की मैत्री कहा गया है। गाँधी के विराट व्यक्तित्व को विश्व रंगमंच पर रखकर प्रस्तुत करने का यह एक अभिनव काव्य-प्रयत्न है: मेरे तीर्थसलिल से हे प्रभु, मेरी गगरी भरी-भरी। प्रेम-अहिंसा भाव का प्रतिपादन कवि का मुख्य लक्ष्य है। इसे मार्मिक काव्य-अभिव्यक्ति देने कि लिए उसने बिम्बों, प्रतीकों का सहारा लिया है और प्रांजल भाषा में बातें कही गई हैं: तुम हे निखिल बंधु करते हो शान्ति पाठ/प्रेम का अचल ठाठ/ एकरस दीखता तुम्हारी पुण्य वीणा में/शुद्ध स्वर लीना में। इस प्रकार बापू गाँधी के व्यक्तित्व की विशिष्टता को उजागर करता हुआ काव्य है।

'दैनिकी' शीर्षक से सामयिक संदर्भों का बोध होता है और कवि सियारामशरण गुप्त ने स्वयं इसका उल्लेख किया है। वे विश्व-युद्ध के विनाश की चर्चा करते हुए 'जनरुचि' की बात भी करते हैं, अर्थात् सामान्यजन की भावनाओं का उपयोग। 'दैनिकी' की सत्तर छोटी कविताओं में ऐसे विषय हैं जो सामने के जीवन-यथार्थ में कवि की रुचि का परिचय देते हैं: मजूर, दो पैसे की कथा, अंडमान, बिरजू, आदि। कहा जा सकता है कि कवि कल्पना की भूमि से थोड़ा हटकर वास्तविकता का संस्पर्श करता है। 'बिरजू' में मज़दूर की स्थिति है: बुझ गई हँसी उसके मुख की, बैरी है यह उसका विराम/फिर आ पहुँचे स्वामी उसके, वह बैठा है, वह है निकाम। रोते शिशु, पिटती बालिका, गूंगी वाणी, फावड़ा-हल सामान्यजन के प्रति कवि की सहानुभूति बताते हैं।

कवि को लगता है कि संसार यातनाग्रस्त है-कई प्रकार के विकारों से। मनुष्य ही जैसे मनुष्य का शत्रु हो गया है-चतुर्दिक अमानुषीकरण: 'किस अग्नि सुरा से मनुज आज मदमाता।' विश्वयुद्ध ने मनुष्यता को विनाश की ओर पहुँचा दिया है और हिरोशिमा पर अणुबम-वर्षा इसका उदाहरण : सहसा ऊपर प्रलय मेघ-सा एक यान

घहरा/विस्फोटों के वज्रपात में काल हो उठा बहरा/ धमक धमाके में शतशत वे भवन गिरे गहराते/अग्नि धूम के मेघ भूमि पर दीख पड़े लहराते/सुख-दुख की बहु घूप-छांह में जीवित थी जो नगरी/फिर चीत्कार मचाकर उस पर मृत्यु स्वयं आ उभरी। इससे कवि की व्यापक चिन्ता का पता चलता है। युद्ध का विरोधी-स्वर कवि की गाँधीवादी शान्ति नीति का ही एक पक्ष है। इस दृष्टि से 'दैनिकी' की 'यंत्रपुरी' कविता विचारणीय है जहाँ कवि यांत्रिक सभ्यता को अपूर्ण मानता है जिसका उल्लेख जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' काव्य के सारस्वत-वर्णन में किया है। माटी का स्पर्श 'दैनिकी' काव्य की विशेषता है और कवि के नये प्रयाण का सूचक। 'उन्मुख' कविता में धरती का गुणगान हैः जलधाराएं पृथ्वी पर आकर ही सुशोभित हैं। जिस समय ये कविताएं रची गईं, संसार में भौतिकवाद, यंत्रवाद के दबाव बढ़ रहे थे, युद्ध का विनाश था। ऐसी स्थिति में कवि का मानववादी स्वर व्यक्त हुआ और वह अमानुषीकरण से चिन्तित है।

नकुल (१९४६) काव्य की कथा महाभारत के वनपर्व पर आधारित है जिसे कवि ने पाँच खंडों में विभाजित किया है। प्रथम खंड में पांडव अज्ञातवास के दिनों में द्रौपदी के साथ वन में थे। पास के तपस्वी की अरणि मथनिका एक हिरण की सींगों में फंस गई और वह कष्ट में था। युधिष्ठिर ने तपस्वी के साथ इस हिरण का पीछा किया। वे एक जलाशय के पास पहुँचे जिसका जल विषाक्त था। दूसरे खंड में कवि ने वनगंगा में द्रौपदी के जल-स्नान का वर्णन किया है जो आत्मालाप से भी गुजरती हैः अंजलिजल से वक्ष बाहु, कच भिगो भिगोकर/ जलधारा में पसर गई वह लम्बी होकर/सैकत में फिर युग मृणाल-भुज स्थापित कर निज/ऊपर समुद उछाल दिया उसने मुख सरसिज। यहाँ कविता शृंगार की नयी उठान लेती है। तीसरे खण्ड में द्रौपदी-अर्जुन के राग-भाव का वर्णन है जिससे काव्य में एक नयी सरसता आई है। अर्जुन कहते हैंः खड़ी रहो प्रियतमे, तनिक को तुम ऐसी ही/इस निकुंज में यहाँ लिये नभ की सारी श्री/उतरी हो तुम मुंज उषा देवी ज्यों नीचे/कच-गुच्छों में किये ओट में निशि को पीछे। अर्जुन-द्रौपदी अमृतकुंड के पास पहुँचते हैं। चतुर्थ खण्ड में चार पांडवों की अमृतकुंड-यात्रा का वर्णन है जहाँ दुर्योधन दल के दो पात्र दुर्जय और वज्रबाहु भी हैं। पांचवें खंड में युधिष्ठिर अपने भाइयों और द्रौपदी को मूर्छित देखकर दुःखी हैं। वे नकुल के लिए जीवन-दान चाहते हैं, पर मणिभद्र अपने संजीवन कण से सबको जीवित कर देता है।

इस काव्य का 'नकुल' शीर्षक किंचित आश्चर्य में डाल सकता है क्योंकि पाण्डवों में उनकी भूमिका अपेक्षाकृत गौण थी। पर काव्य के अंत में युधिष्ठिर माद्री के पुत्र नकुल के लिए जीवन-दान मांगते हैं जो कनिष्ठ थे, इससे उन्हें थोड़ी प्रमुखता मिल जाती है। यह विचार भी व्यक्त किया जाता है कि इसका एक कारण कवि की

अपने अग्रज जैसी वह दृष्टि है जिसमें उपेक्षितों को महत्त्व दिया गया है। इस कथा में सियारामशरणजी ने आंशिक परिवर्तन किए हैं और वर्णनात्मकता के साथ उन प्रसंगों को प्रमुखता दी गई है जहाँ काव्यात्मकता उभारी जा सके। प्रकृति का अधिकाधिक प्रयोग और वनदेवी के रूप में उसकी कल्पना काव्य का विशेष आकर्षण है। प्रकृति मनोवांछित परिवेश बनाने के लिए पीठिका का कार्य करती है, जैसे द्रौपदी-सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग में: घनमाला में फूट पड़े सहसा ज्यों बिजली/कर कुछ का कुछ समय दृश्य जल से वह निकली/निरख रूप-लावण्य विश्व का विस्मय भर के/खुले रह गये नयन विजन के, तट प्रान्तर के। वनखंडी के कई सुन्दर दृश्य यहाँ उभरे हैं जिससे कवि की नयी उठान का परिचय मिलता है। प्रकृति और मानव-भावों में तादात्मय छायावादी काव्य की प्रवृत्ति है और 'नकुल' काव्य में भी उसे देखा जा सकता है। प्रकृति के प्रयोग से इस काव्य को नया सौन्दर्य मिला है, यहाँ तक कि विचारों के प्रकाशन के लिए भी इसका उपयोग हुआ है। द्रौपदी कहती है: नाथ, सिन्धु जो दिग्दिगन्त पर्यन्त प्रसारित/किस घट से कब हुआ कहाँ वह पूर्णास्वादित/जिस विहगी ने पान किया उसका जी भर/उसके लिए अशेष शेष हो चुका वहीं पर।

प्रश्न है कि सियारामशरणजी ने महाभारत का यह कथा-प्रसंग क्यों लिया? स्वर्ग के साथ पृथ्वी की चर्चा भी आई है और अर्जुन की इन्द्रपुरी-यात्रा का उल्लेख भी। कवि की मानववादी दृष्टि कई स्थलों पर उभरकर आई है। अर्जुन इन्द्रपुरी का वर्णन विस्तार से करता है, यहाँ तक कि कुछ कथाओं का भी, पर धरती की अपनी गरिमा है: हम अपने ही धरा धाम के हैं अभिलाषी/मर्त्यभूमि में चारु निरन्तर के आश्वासी/फूल रहे हम इसी मेदिनी के फूलों में/ झूल रहे ज्यों कण्ठहार बिंधकर शूलों में। यह मानववादी दृष्टि संवेदन के धरातल पर व्यक्त हुई है जिससे कविता उपदेशात्मक अथवा प्रवचनमयी होने से बच सकी है। दिनकर ने 'उर्वशी' में भी पृथ्वी और स्वर्ग के प्रश्न उठाए हैं। कविता छायावाद की गीतात्मकता की समीपी है और भावनामयता से सम्पन्न है। यहाँ कवि प्रौढ़ता की भूमि पर है और कवि जीवन-जगत के कुछ प्रश्नों की ओर इशारा करता है। 'नकुल' सियारामशरण का प्रतिष्ठित काव्य-स्वर है।

'नोआखाली में' काव्य का संबंध महात्मा गाँधी की नोआखाली यात्रा से है। साम्प्रदायिक सौमनस्य के लिए उन्होंने यह खतरा उठाया था। कविता के आरंभ में कवि दुःख व्यक्त करता है कि बंगाल को क्या हो गया है: सुजला सुफला बंगभूमि का, देश आज यह करुण दाह/वह बन्देमातरम् मन्त्र यह मूर्तिमन्त भरता है आह। कविता संकलन की ग्यारह कविताओं का मुख्य स्वर मेल-जोल है जिसका प्रयत्न संतों ने भारतीय मध्यकाल में भी किया था। उनमें सूफी संत भी हैं जिन्हें कबीर की तरह हिन्दू-मुस्लिम दोनों की स्वीकृति मिली। जातीय सौमनस्य के रूप में सियारामशरणजी गणेशशंकर विद्यार्थी को अपनी श्रद्धांजलि, 'आत्मोत्सर्ग' काव्य में

पहले ही दे चुके थे। 'नोआखाली में' उसी भाईचारे की भावना का विकास है। इस शीर्षक की कविता में सत्रह छोटे-छोटे खंड हैं, चार-चार छंदों के। यहाँ कवि परिवर्तित परिवेश पर दुःख व्यक्त करता हैः नारिकेल के पूंगीफल के पेड़ों की हरियाली में/ उजड़ा-उजड़ा एक गाँव वह है उस नोआखाली में। जातीय संघर्ष के दृश्य उभरते हैं: जले-फुंके गेह, चिताएं, मरघट, अस्थि-चयन, रोदन, तिमिर, मौन घंटा ध्वनि, क्रूरता, अन्धकार के शिखर, भूंकते कुत्ते, आदमखोर आदि। कवि ने महाकाल, महाप्रस्थान, महानिद्रा जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। साम्प्रदायिक विभीषिका को गहराने के लिए कवि ने घटना का भी सहारा लिया है और टिप्पणी की हैः मनुज भेड़िये बन जाते हैं अथवा मनुज नहीं पशु हैं वे पूरे। सांस्कृतिक सौमनस्य के लिए जिन कवियों ने अपनी कविताओं को समर्पित किया, उनमें सियारामशरण गुप्त का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

जातीय भाई-चारा और साम्प्रदायिक मेल-मिलाप भारतीय समाज के आधार हैं। संतों से लेकर गुरुनानक और महात्मा गाँधी तक ने इस पर बल दिया। कबीर ने दोनों प्रमुख जातियों के कट्टरपंथियों पर तीखी टिप्पणी की ओर कहा कि सभी एक ख़ुदा के बंदे हैं फिर टकराहट क्यों? सियारामशरण इसी सौमनस्य की परम्परा में कहते हैं कि दाढ़ी-चोटी की लड़ाई बेईमानी है। कविताओं के कुछ शीर्षक ऐसे हैं जो कवि की मेल-मिलाप भावना बताते हैं। रमजानी ने सत्तर रमजान देखे हैं और बड़े मियाँ कहकर सब उनका सम्मान करते हैं। वे सांप्रदायिकता का माहौल देकर दुःखी होते हैं। 'पाक कलाम' कविता में वृद्ध पिता कासिम का प्रश्न हैः नोआखाली जंगल है क्या, वहाँ भेड़िये हैं रहते? उसे गाँधी की चिन्ता है जो नोआखाली में दोनों जातियों के मेल-जोल के लिए प्रयत्नशील हैं।' सियारामशरणजी ने गाँधी के नोआखाली-प्रवास के विषय में लिखा हैः लग गया लेप ज्यों रुचिर प्रभा चन्दन का अवनी का अपना हुआ सुदूर गगन का/उस अमलाभा के लिए नहीं भयम/कोई/असफल होगा अवरोध-रज्जु बन्धन का/कब कहाँ रुका रह सका प्रभात तिमिर से/जागी यह अन्तर्ज्योति अभय में फिर से। इस कविता में गाँधी को काली तमसा का नव निशान्त कहकर सम्बोधित किया गया है। जातीय भाई-चारा गाँधी का प्रिय विषय था और वे भारतीय उपमहाद्वीप के विभाजन के विरुद्ध थे। यहाँ तक कि सांप्रदायिक सौमनस्य के लिए शहीद हो गए। 'नोआखाली में' कविता-संकलन गाँधीजी की इसी प्रेम भावना के निकट है।

'जय हिन्द' को हम त्वरित प्रतिक्रिया का काव्य कह सकते हैं। इसका प्रकाशन स्वतंत्रता दिवस, १५ अगस्त १९४७ के अवसर पर हुआ। सियारामशरण भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़े हुए राष्ट्रीय भावना के कवि हैं और गाँधी के व्यक्तित्व से विशेष प्रभावित हैं। इसलिए स्वतंत्रता की प्राप्ति कवि के लिए विशेष उल्लास

का क्षण है। देश के कवियों ने इस अवसर पर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति अपने-अपने ढंग से की है, जिसमें एक ओर स्वतंत्रता का स्वागत है, दूसरी ओर गहरा दायित्व-बोध भी। कवियों ने इसे जनराज्य के रूप में देखा। कवि रामधारीसिंह दिनकर की पंक्तियाँ हैं: सिंहासन खाली करो कि जनता आती है। 'जयहिन्द' में कवि सियारामशरण गुप्त उन शहीदों का सादर स्मरण करते हैं जिन्होंने स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की बलि दे दी। यह कवि का कृतज्ञता-भाव है जिसकी सराहना करनी होगी। सच्चाई यह है कि जो राष्ट्र अपने महानपुरुषों का सम्मान करना नहीं जानता, उसे कृतघ्न कहा जायेगा और धीरे-धीरे वह प्रेरणारहित हो जाता है।

कवि सियारामशरण गुप्त नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के विजयी नारे का उपयोग काव्य के शीर्षक रूप में करते है, इससे उनकी उत्कट राष्ट्रीय भावना का पता चलता है। वे भारत की भूमि, प्रकृति, भूगोल, नदी-निर्झर, पर्वतशिखर, समुद्र सबको अपने संवदेन में स्थान देते हैं और कहते हैं: विश्व सरोवर के सौरभमय प्रिय अरविन्द हमारे हिन्द। स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए कवि ने कहा है: 'उज्जवल विजय-दीप्ति माथों में।' इस स्वतंत्रता में बलपंथियों का योगदान तो है ही, महात्मा गाँधी की रक्तहीन क्रांति की भूमिका सर्वाधिक उल्लेखनीय है। उन्होंने एक आहत राष्ट्र को संगठित किया, उसे नया आत्मविश्वास दिया। भारत की स्वतंत्रता एक नया अरुणोदय है, विश्व के रंगमंच पर। यह विविधता में एकता की सांस्कृतिक विजय है: लाऊँ मातृभूमि के चिरन्तन से/एक रस आ रही अखण्ड निर्मलिनता। सोलह पृष्ठों के इस छोटे से काव्य में कवि की सामयिक प्रतिक्रियाएं व्यक्त हुई हैं और इससे अधिक की आशा करना उचित नहीं होगा। पर सामान्यजन की उपस्थिति कवि की सामाजिक चेतना को व्यक्त करती है: वे जो दूर खेतों में/ मिट्टी घास-फूस है जिनके निकेतों में/गिन सकते हैं/खुली जिनकी पसलियां/और वह पुतली जो घरों में घिरे/यंत्र के ही अंग निरे/हो गये हैं काठ की पुतलियां/जागृत सभी को जान गये/निज का स्वरूप पहचान गये।

'सुनन्दा' (१९५६) काव्य की चर्चा कम विद्वानों ने की है। सियारामशरण ने जो कथा-सूत्र दिए हैं, उसके अनुसार नक्षत्र नगर में अमल वंश का राज्य है जिसकी अपनी निर्मल गाथा है। पर इस समय स्थिति किंचित भिन्न है। राजा ने शासन-भार छोटी रानी को दे रखा है जो राजकुमार के व्यवहार से सन्तुष्ट नहीं है। नगर की अप्रत्याशित घटना को लेकर घोषणा की जाती है कि विद्रोही बाहर न निकलने पाएं। कथा का प्रारंभ अरण्य प्रदेश से होता है जहाँ विद्रोही राजकुमार और उसके मित्र सुरंजन पहुँचते हैं। राजकुमार की प्रेमिका सुनन्दा मालिनी तट के लौह दुर्ग में बन्दिनी है। सुरंजन की प्रेयसी चम्पा उसके पास है। इस प्रकार कविता राजकुमार-सुनन्द सुरंजन-चम्पा की प्रेम-कथा से सम्वद्ध हो जाती है।

कविता के आंरभ में बदले परिवेश का संकेत है– शंका से घिरा नक्षत्र नगर। फिर वन का वर्णन है जहाँ राजकुमार और उसके मित्र सुरंजन की भेंट होती है। उनकी लंबी बातचीत होती है। यहीं दोनों अपनी प्रेमिकाओं का उल्लेख करते हैं :

मार्ग एक ही हम दोनों का मिलन-सूत्र वह सुरुचिर। वे दोनों प्रेयसियों की चर्चा करते हैं और वातावरण काफी रूमानी है, जैसे राजकुमार की जन्मतिथि पर। फागुन में रंग की बरसा-सा, उत्सव वह। मित्रों की इस लंबी बातचीत में प्रकृति-वर्णन भी है। वह फागुन, उसके रंग रस, कोकिल कंठों के स्वर/मृग-यूथों की भाँति पलायित, हुए चौकड़ी भर-भर। कवि ने राजकुमार की प्रेमिका का पक्ष भी प्रस्तुत किया है, जहाँ उसका विनय-भाव है: धूरि धूसरा इस धरती की, पुत्री मैं युवराजन्। इधर सब आश्चर्य करते हैं कि राजमोह छोड़कर राजकुमार कहाँ चला गया। छोटी रानी का प्रिय सेवक उद्भट साधु का छदम् वेष धारण कर राजकुमार को घर लौटा लाना चाहता है। सुरंजन की प्रेम-भावना को व्यक्त करने के लिए काव्य में कुछ गीतों का प्रयोग किया गया है: आहा वन वसन्त मनभाया आदि। काव्य के अंत में सुनन्दा-चम्पा का वार्तालाप है और फिर राजकुमार-सुनन्दा, सुरंजन-चम्पा मिलनः उगी निशा के नीले सर में अरुणा उषा कमलिनी/डोल उठी चंचल समीर पर, आभा सुरभि अमलिनी। काव्य में कथानक तो लिया गया है, पर मुख्य आशय रूमानी संवेदनों की अभिव्यक्ति है जिसे प्रकृति की सहायता से व्यक्त किया गया है। 'सुनन्दा' सियारामशरण गुप्त की रूमानी प्रवृत्ति का काव्य है।

'अमृत पुत्र' (१९५९) काव्य सियारामशरण गुप्त की धर्मनिरपेक्ष दृष्टि का प्रमाण है। वैष्णव परम्परा में दीक्षित होकर उन्होंने प्रभु ईसामसीह के जीवन को केन्द्र में रखकर काव्य रचना की। यह इसलिए भी उल्लेखनीय कि गुप्तबंधु राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और सियारामशरण गुप्त ने हिन्दी काव्य में इस प्रकार के अभिनव प्रयोग किए। प्रस्तावना में इस बात पर कवि ने आश्चर्य किया है कि प्रभु ईसु को कविताबद्ध करने के अधिक प्रयास नहीं हुए। 'कथा-प्रसंग' में सियारामशरणजी ने ईसु के कुछ प्रमुख घटना-चक्रों का उल्लेख किया है। इसमें 'सामरी' और 'क्रूसधर' दो प्रंसगों को लिया गया है, जिसका संकेत ए. जी. शिरेफ ने भी अपने पत्र में किया है: समारा की कुएँ वाली घटना और दूसरी ख्रीस्ट का क्रूसारोहण। 'अमृत पुत्र' में इन प्रसंगों के माध्यम से ईसु का संघर्ष भी आया है।

'सामरी' कविता में कहा गया है: ईसु वह जो अमृत-पुत्र महापुरुष। एक दिन ईसु समारा में कुएँ की जगत पर चुपचाप बैठे थे। तभी एक नारी जल भरने आई और ईसु को देखकर आश्चर्यचकित। ईसु ने जल मांगा तो वह स्तब्ध। उच्चकुलीन सामान्यजन से जल नहीं ग्रहण करते। सामरी-नारी कहती है: भेंट लो प्रभु पामरी के नीर की; सामरी भी है समर्पित साथ ही। पूरा गाँव उल्लास से भर जाता है-जागरण पर्व की तरह। ईसु के विषय में सामरी कहती है कि येरुसलम के जो हम लोग अस्पृश्य माने जाते हैं, उन्हें प्रभु ने नया जीवन दिया। कवि ने सामरी के माध्यम से नये रूपान्तरण का वर्णन किया है: अनति दूर भविष्य के सुवसन्त की/सुचिर सुषमा

श्री विभा निज में भरे/अमृतघन की यह नई रिमझिम हुई/धूर कांटे से पटी ही भूमि पर।

काव्य के दूसरे खण्ड 'क्रूसधर' में ईसु के क्रूस ढोने का वर्णन है जिस विषय में सामान्यजन के प्रतिनिधि सायमन की प्रतिक्रिया व्यक्त की गई है। कविता का आरंभ ही सायमन के वक्तव्य से होता है: सब गुणों से हीन, सबसे दीन हूँ। एक गूंगा भिखारी कथा में प्रवेश करता है जो ईसु की प्रशंसा करता है कि दीन जन पर उनकी विशेष ममता है। सायमन की जिज्ञासा बढ़ती है, वह ईसु की कहानियाँ सुनता है और कहता है कि यह पुरुष सामान्य नहीं हो सकता, वह संसार की सर्वोत्तम ज्योति है। बलिपंथी भाव की पंक्तियाँ ईसु के मुख से कहलाई गई हैं: आ सकेगा नर वहीं मेरे निकट, क्रूस जो अपना उठाकर चल सके। सायमन अपने समय की दुर्दशा को देखता है जहाँ सारी मर्यादाएं बिला गई हैं। वह ईसु के दर्शन चाहता है और तीर्थ यात्रा पर निकल पड़ता है। मार्ग में अपना सलीब स्वयं ढोते ईसु को देखता है और भाग्यचक्र यह कि उनके जमीन पर गिर पड़ने पर क्रूस ढोने का काम सायमन को करना पड़ता है: सिर उठाकर ईसु ने निरखा मुझे, मंत्र-कीलित सा अचानक रह गया। सायमन ने गहरे तक अनुभव किया: था अतीन्द्रिय अतनु आत्मा का परस। फिर ईसु का बलिदान। अंत के तीसरे खंड में कवि ने प्रभु के चिरप्रस्थान को सामान्यजन की श्रद्धा निवेदित की है।

प्रभु ईसा के जीवन की दो प्रमुख घटनाओं को लेकर रचा गया यह काव्य ईसा की जीवनरेखाओं का वर्णन-वृत्तान्त नहीं है। यहाँ कवि अमानुषीकरण से संघर्ष करते ईसु के बलिदान को रेखांकित करना चाहता है: मनुज वैसे ही बने हैं भेड़िये, हिंस्र वैर विरोध से आक्रान्त हैं। कवि की टिप्पणी है: रह गये यदि तुम हमारे बीच में, क्रूस पर फिर से चढ़ा देंगे तुम्हें। कृष्ण के अवसान पर धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' की पंक्तियाँ याद आती हैं: हर क्षण होती है प्रभु की मृत्यु कहीं न कहीं। 'अमृतपुत्र' में कवि ने ईसा के शान्त, करुण मानवीय व्यक्तित्व को काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी है और कविता एक मार्मिकता प्राप्त करती है। ईसु का अवसान है: तीर्थ की पावक पताका बुझ गई, रीतकर भी वह प्रभा पूरित रही, अथवा झुकझुके में/रात्रिरज फटकारती/हूकती झकझोरती-सी प्राण-मन/डोलती है नवपवन। कविता में उसके अमानुषीकरण के माध्यम से कवि ने व्यापक संकेत किए हैं और सब कुछ संभव बनाया है- प्रौढ़ काव्य-चरण के स्तर पर।

उन्मुक्त (१९४०) और गोपिका (१९६३) सियारामशरण के दो काव्य-नाटक हैं। यहाँ कवि ने कथोपकथन, दृश्य-विधान आदि का प्रयोग किया तो है, पर इलियट ने आधुनिक नाटक के लिए जिस तनाव से गुजरना कहा है, उसका यहाँ अभाव है। इस दृष्टि से कविता-माध्यम ही यहाँ प्रमुख है। 'उन्मुक्त' पर द्वितीय महायुद्ध की छाया

है। इसमें कुसुम दीप की कथा ली गई है और अन्य द्वीप भी हैं-लौह, ताम्र, रौप्य द्वीप जिन्हें हम रूपक-प्रयोग कह सकते हैं, जयशंकर प्रसाद के 'कामना' नाटक की तरह। 'उत्मुक्त' की कथावस्तु का आरम्भ 'अवतरण' से है जहाँ कुसुमावती ही आशंकाग्रस्त है: व्यग्र विकल डर चौंक-चौंक उठता है रह-रह/घटित न जाने हुआ कहाँ क्या क्रूर भयावह। जिन शब्दों का प्रयोग वह करती है, उससे आगामी संघर्ष का आभास मिलता है: त्रास, संशय, सघन तम, भय, प्लावन। कहती है: सोच रही हूँ—हुआ कहीं कुछ अशुभ अमंगल। जयकेतु कहता है हम संघर्ष के लिए तत्पर हैं। भूमिका के तौर पर इन दोनों चरित्रों के कथोपकथन से आने वाली टकराहट का पता चलता है।

अलिन्द, घोषणा, रणक्षेत्र, मृदुलालय, सुश्रूषालय, शिविर, ध्वंस, एकान्त, संचालन शिविर, शयनकक्ष, बन्दी, विज्ञप्ति, पराभव, उन्मुक्त के शीर्षकों में जो दृश्य अंकित किए गए हैं, उनमें एकालाप/स्वगत कथन की प्रमुखता है। प्रमुख पात्र हैं: कुसुमावती जो कुसुमद्वीप की प्रतीक देवी है। गुणधर इस द्वीप का शक्ति संचालन करते हैं। उसकी पत्नी का नाम मृदुला है। कुसुमद्वीप के सेनापति रूप पुष्पदन्त हैं और हेमा मृदुला की मित्राणी है। सुलोचन-ज्ञानधर दो शिशुओं की हत्या हो चुकी है। गुणधर और पुष्पदन्त दो पृथक जीवन दृष्टियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। गुणधर युद्ध का विरोध करता है, वह शान्ति का पक्षधर है। उसके व्यक्तित्व पर गाँधीवादी अहिंसा-प्रेम का प्रभाव है। 'सुश्रूषालय' शीर्षक से गुणधर का सम्पूर्ण स्वगत कथन है, जहाँ वह विश्व-भर की चिन्ता दार्शनिक की तरह करता है। कल्पनाशील ढंग से सोचता है: वहाँ रुदन भी हुआ ह्रासमय सरस सुमंगल/शय्या पर उस पुत्रवती का विकल नयनजल/बना अमल आनन्द अशुचिता भी थी शुचिता। इसकी तुलना में पुष्पदन्त शत्रु को परास्त करना चाहता है। अंत में सियारामशरणजी गाँधीवादी ढंग से पुष्पदंत का हृदय-परिवर्तन कराते हैं। वह गुणधर का शान्ति मार्ग स्वीकारता है, कहता है: जीर्ण-ज्वलन में और मरण धारा में निर्मल/पुनरुज्जीवित मनुष्यत्व हो उठा हमारा/द्वीप द्वीप की वर्ण-वर्ण की कुंचित कारा/रुद्ध किए थी उसे: आज गिरि नद सागर के/सीमाबन्धन टूट गए हैं अवनी पर/हम सब जैसे एक जहाँ जिसमें भी पीड़ित/मानव असीम अतुल में है सब प्रसरित।

छोटे-छोटे दृश्यों में घटनाक्रम अग्रसर होता है, जिसमें एक ओर सैनिक संघर्ष की विभीषका है, दूसरी ओर गुणधर का दार्शनिक की तरह जीवन के विषय में सोचना-विचारना। युद्ध का विरोध, शान्ति का प्रचार काव्य नाटक के प्रमुख प्रतिपाद्य हैं। लम्बे-लम्बे संवाद, स्वगत कथन, एकालाप नाटक की कथा को मंथर कर देते हैं, इसलिए उसमें नाट्य कौशल का विकास नहीं हो पाता। यह एक वैचारिक प्रयत्न-सा प्रतीत होता है। कई बार चरित्रों का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व प्रमुखता प्राप्त करता है जिससे

कथानक रुक-ठहर जाता है। 'शिविर' खंड में पुष्पदन्त अपना पक्ष प्रस्तुत करता है और 'सुश्रूषालय' में गुणधर। इसी के बीच मृदुला है जिसे भी जगत की चिन्ता है: ये तृण तरुदल ललित लताएं मृदुल कुसुमसह/ये कुरंग बहुरंग, कलित कलकण्ठ विहंगम/शैलशिखर पुर ग्राम विपिन उपवन जड़ जंगम/शुष्क शुष्क निर्जीव कभी के सब हो जाते/इस धरती का स्तन्य न यदि वे पीने पाते। 'उन्मुक्त' युद्ध के विरोध में लिखा गया वैचारिक काव्य-प्रयत्न है।

'गोपिका' काव्य-नाटक में सियारामशरण गुप्त की वैष्णव चेतना को प्रकाशन की सुविधा मिली है और यह उनकी अन्तिम काव्य-कृति है। इसमें कृष्ण के ब्रजमण्डल से जाने और लौट आने तक की कथा है। सत्रह शीर्षकों में कथानक 'उन्मुक्त' जैसा ही 'पैटर्न' लेकर चलता है – लम्बे कथोपकथन और स्वागत वक्तव्य। बीच-बीच में कुछ गीत हैं, पर मुख्यतया अतुकान्त प्रयोग हैं, कई बार गद्य के समीपी। आरम्भ में ही कृष्ण के अभाव में स्थिति है: मधुबन आज कहाँ। जब ब्रजचन्द्र ब्रजभूमि से/चले गए अचानक ही मुख पर इसके अमावस की/कालिख सी पोत गए/सूख चलीं मधुवन ही समस्त जीवन-शिराएं/ रस-धाराएं तभी तुरन्त/छिन्न हुए मधुकर यूथ हार/विरस विवर्ण लतिकाएं हुईं/पल्लव करों से टप-टप छूट पड़े छोटे-बड़े मंगल प्रसून घट। भावुकता के साथ कृष्णविहीन ब्रजमण्डल की व्यथा-कथा विस्तार से आई है जिसे प्रकृति की सहायता से व्यक्त किया गया है। सूरदास के भ्रमरगीत में सगुण-निर्गुण का वैचारिक संघर्ष भी आया है, पर 'गोपिका' में गद्यगीत जैसी भावुकता है।

कृष्ण के अतिरिक्त प्रमुख गोपिका इन्दुमती, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि पात्र हैं। पर आश्चर्यजनक यह कि श्रीमद्‌भागवत की तरह ही कृष्णप्रिया राधा की यहाँ मुख्य भूमिका नहीं। प्रमुख गोपिका इन्दुमती ने उसका स्थान लिया है। वह पूर्व स्मृतियों में जीती है-अनेक प्रकार से प्रिय कृष्ण का स्मरण करती, विरह-व्यथा से गुजरती, निरन्तर कृष्णार्पिता: किस कुंज वन में अकेले वेणु फूंक रहे? कहीं रहें, उन्हें खोज लूंगी ही। इन्दुमती के अतिरिक्त नारी पात्र रुक्मिणी, गोपिका, मंजुला आदि का उपयोग भी कवि ने किया है। पुरुष पात्रों में दुर्जय आरंभ में दस्यु पात्र है, पर बाद में कृष्ण के प्रभाव में उसका नया रूपान्तरण होता है। कृष्णकाव्य की लंबी परम्परा भक्ति के प्रस्थानग्रंथ भागवत से लेकर सूर के सूरसागर, द्वारका प्रसाद मिश्र के कृष्णायन और धर्मवीर भारती के अंधायुग तक आती है। इसमें गोपिका की स्थिति यह कि यहाँ कवि इन्दुमति की सहज भावनामयता के माध्यम से एक ऐसे प्रेम-भाव को व्यक्त करना चाहता है जिसका निरन्तर विस्तार होता है। जिसे कृष्णकाव्य के संदर्भ में माधुर्य भाव कहा गया है, उसी का उदात्तीकरण यहाँ होता है। कवि की वैष्णव भावना भी इस प्रक्रिया में सहयोगी है। काव्य के अन्त में कृष्ण का कथन विचारणीय है: स्वस्थ रखना है तुम्हें सर्व को, निखिल को/रहना तुम्हें है यहीं श्री सुरभि पथ/पर

संचय के साथ-साथ त्याग का उपार्जन करो सप्रेम/निस्सन्ताप जूझना है पक्ष-प्रतिपक्ष के समस्त दुर्जयों से/सभी क्रूरों से, विजय समग्र पाओ तब तक। वैष्णव चेतना का एक सामाजिक मानवीय पक्ष है जिस ओर आधुनिक युग में महात्मा गाँधी ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया-वैष्णवजन ते तेने कहिए जे पीर पराई जाने रे। 'गोपिका' मुक्तछन्द में रचा गया ऐसा ही काव्य नाटक है, वैष्णव चेतना का नया मानवीय रूप।

इस प्रकार 'बापू से लेकर गोपिका' तक का अंतिम काव्य चरण सियारामशरण गुप्त की परिपक्वता का द्योतक है। यहाँ आकर कवि चिन्तन की नयी क्षमताएं विकसित करता है और उन्हें संवेदन सम्पत्ति बनाकर कविता में प्रस्तुत करना चाहता है। उसका विचारक रूप सार्वभौम बनने का प्रयत्न करता है। वर्णनात्मकता पीछे छूट जाती है और उसके स्थान पर कवि उन प्रसंगों का विशेष उपयोग करता है जो उसके मनोवांछित आशय का प्रकाशन कर सकें, जैसे अमृत-पुत्र में ईसा का करुणा भाव, नकुल में सामान्यजन का समर्थन, दैनिकी में शांति की कामना, नोआखाली में अहिंसा का प्रतिपादन। क्रमशः एक ऐसी गीतात्मकता का प्रवेश होता है जहाँ कवि अपनी निजता को अधिकाधिक ऊर्ध्वमुखी बनाने का प्रयत्न करता है। भाषा एक नयी उड़ान लेती है और अभिव्यक्ति सामर्थ्य में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

# उपन्यास और कहानियाँ

सियारामशरण गुप्त का मुख्य माध्यम काव्य है, पर उन्होंने तीन उपन्यास और एक कहानी-संकलन भी दिये। प्रायः कवि कविता से गद्य की ओर आते हैं, पर सियारामशरण का कथा-साहित्य उनके पूर्ववर्ती रचना-चरण से सम्बन्ध रखता है। उपन्यासों का प्रकाशन १९३२-१९३७ के बीच हुआः 'गोद' (१९३२), 'अंतिम आकांक्षा' (१९३४) और 'नारी' (१९३७)। कथासंकलन 'मानुषी' का प्रकाशन वर्ष १९३३ है। इस समय प्रेमचन्द जैसे यशस्वी कथाकार रचनारत थे और संभव है कहीं उनकी भी प्रेरणा हो। सियारामशरण में जो सामाजिक चेतना के बीज मौजूद रहे हैं, उनके प्रकाशन के लिए कथा-साहित्य उन्हें सही माध्यम प्रतीत हुआ होगा। पर उनकी सुधारवादी दृष्टि उन्हें समग्र यथार्थ से नहीं जुड़ने देती। उन्होंने स्वयं इसे 'अज्ञात, अपरिचित पथ' कहा है।

'गोद' सियारामशरण गुप्त का आरंभिक उपन्यास है जिसमें ग्राम-जीवन की कथा ली गई है। कथानायक को केन्द्र में रखकर उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। आंरभ में शोभाराम की अपनी भाभी पार्वती से बातचीत है जिससे भाभी की प्रयाग में कुम्भ-स्नान की तीर्थयात्रा का पता चलता है। और विचित्र यह कि वहीं कौसा की लड़की किशोरी कहीं भीड़-भाड़ में खो गई थी। इसी किशोरी से गंगादीन ने शोभाराम का विवाह निश्चित किया था। वह रात-भर किसी नारी-शिविर में रहने के लिए विवश थी। पर रूढ़िग्रस्त ग्राम-समाज में उसे लेकर कई प्रकार के प्रवाद चल पड़ते हैं। टिप्पणी है कि 'अच्छी हो या बुरी; जिस लड़की की ऐसी बुराई फैल चुकी है, हम भी उसे अपनी बहू कैसे बना सकते हैं?' जबकि किशोरी हर दृष्टि से निर्दोष है। दयाराम ने इसी आधार पर शोभाराम का विवाह-संबंध किशोरी से न करने का निश्चय किया, यद्यपि पार्वती इससे सहमत नहीं।

कथा के चक्र में शोभाराम का विवाह कहीं अन्यत्र होने की बात चल निकलती है। किशोरी की माँ कौशल्या पहले तो दयाराम से प्रतिवाद की बात सोचती है, पर अंत में विवश होकर बेटी का विवाह अन्यत्र कर देना चाहती है। किशोरी का चरित्र उभरता है: 'जिनका हदय पत्थर का है, उनके सामने हाथ पसारकर तुम भीख माँगने ज़ाओ, मैं यह नहीं देख सकती।' विडम्बना यह कि किशोरी के विवाह की बात एक प्रौढ़ से होने की बात चलती है। कौशल्या का भाई हरिराम के क्रूर व्यवहार से क्षुब्ध

है, वह जानता है कि पैसे वाले लोगों में दया नहीं होती। सियारामशरण ने उपन्यास में सही लिखा है कि गाँव में बातें तेजी से फैलती हैं, जैसे कौशल्या का कुएँ में कूद पड़ने का असफल प्रयत्न। कथा में एक अन्य पात्र का प्रवेश भी कराया गया है। रूढ़िपंथी गंगादीन तिवारी से उसकी बाल-विधवा बेटी सोना बहस करती है,- शोभाराम-किशोरी का विवाह होना चाहिए। वह पार्वती भाभी से भी सम्पर्क करती है, पर व्यर्थ। शोभाराम और किशोरी दोनों के विवाह-सम्बन्ध अलग-अलग लोगों से करने की तैयारियाँ हैं। पर सोना सक्रिय है और वह इन दोनों को मिला देती है। शोभाराम और किशोरी का विवाह हो जाता है। पर इसी कथा के भीतर गाँव के जमीन-जायदाद के झगड़े भी हैं जिससे उपन्यास को यथार्थ की ज़मीन मिल जाती है।

'गोद' उपन्यास लिखने में सियारामशरण गुप्त का सामाजिक आशय स्पष्ट दिखाई देता है। किशोरी मेले की भीड़-भाड़ में खो जाती है और जल्दी ही मिल भी जाती है। पर अंधविश्वासों में फँसा गाँव उसे लेकर तरह-तरह के प्रवाद फैलाता है। परिणाम यह होता है कि उपन्यास के नायक शोभाराम और किशोरी का विवाह उस समय नहीं हो पाता। दूसरी ओर किशोरी की विधवा माँ अपनी बेटी का विवाह एक प्रौढ़ से निश्चित करने की विवशता महसूस करती है। जैसे सब पुरानी रूढ़ियों, संस्कारों से घिरे हैं। पर सियारामशरण गुप्त उपन्यास को दुःखान्त बनाकर नहीं छोड़ देना चाहते। उनमें समस्या का समाधान पाने की इच्छा भी है। इसलिए शोभाराम विवाह के पहले ही घर से निकल पड़ता है और जिसे वाग्दान दिया जा चुका है, उस किशोरी को अपना लेता है। उसके माध्यम से उपन्यासकार यह दिखाना चाहता है कि भारत की आशा युवावर्ग है। उसे निर्भय होकर आगे आना चाहिए। शोभाराम ऐसी ही आदर्श युवा पीढ़ी का प्रतिनिधि है जो लोकापवाद की चिन्ता न करता हुआ किशोरी का वरण करता है।

उपन्यास का कथानक ग्रामजीवन से सम्बद्ध और पूरा परिवेश भी वहीं का है। गाँव की प्रकृति, वहाँ के संस्कार आदि यहाँ आए हैं, यद्यपि प्रेमचन्द जैसे विस्तृत प्रामाणीकरण का प्रयत्न नहीं है। अधिकांश पात्र यथार्थ को देखते हुए भी आदर्शवाद से बंधे हैं। कथानायक शोभाराम अपनी भाभी पार्वती को माँ तुल्य आदर देता है। किशोरी से विवाह की बात टूट जाने पर वह गहरे अन्तः संघर्ष से गुज़रता है। पर अंत में प्रेम की विजय होती है, वह विद्रोह कर देता है और किशोरी को स्वीकारता है। दयाराम के माध्यम से सियारामशरण भारतीय सम्मिलित परिवार व्यवस्था का एक खाका प्रस्तुत करना चाहते हैं। दयाराम और पार्वती निस्संतान हैं पर उनके लिए शोभाराम बेटे की तरह है। लोकापवादों के भय से दयाराम अपना निर्णय बदलते हैं पर अन्त में शोभाराम किशोरी का विवाह देखकर प्रसन्न हैं। पार्वती प्रतिवाद करती

है, पर भारतीय नारी है, विद्रोह नहीं कर पाती। कथा-नायिका किशोरी सब कुछ सहती-सुनती है और बाल-विधवा सोनू की सहायता से शोभाराम को पा जाती है। पार्वती भी भारतीय नारी की विवशता में बंधी है। उपन्यासकार ने अपनी सहानुभूति इन पात्रों को दी है।

सियारामशरण गुप्त ग्रामसमाज के सामाजिक पिछड़ेपन से असन्तुष्ट हैं। वे जानते हैं कि तरह-तरह की रूढ़ियों से ग्रस्त इस समाज को यदि प्रगति करनी है तो उन सबसे मुक्ति पानी होगी। रामचन्द गाँव का खलनायक जैसा है कि जो तहसीलदार से मिलकर शोभाराम की ओर से दयाराम पर मुकदमा तक चलवा देता है। गाँव का जातिवाद है, दहेज-प्रथा है, जिसमें सब पिस रहे हैं। पर उपन्यासकार मुक्ति के उपाय का संकेत भी करता है: शोभाराम जैसे आदर्श युवकों का सही सामाजिक विद्रोह। 'गोद' एक लघु उपन्यास है और उसकी कथा भी सीमित है-दयाराम, शोभाराम, किशोरी, पार्वती, सोनू आदि के इर्द-गिर्द घूमती। कुछ स्थलों पर बातचीत के सहारे कथाचक्र को आगे बढ़ाया गया है। कुल मिलाकर 'गोद' एक उद्देश्यपरक उपन्यास है जिसमें सियारामशरण गुप्त को सफलता मिली है। सायास प्रयत्न के स्थान पर यह सहज गति से अग्रसर होती कथा-कृति है।

'अंतिम आकांक्षा' (१९३४) सियारामशरण गुप्त का दूसरा उपन्यास है जिसमें एक घरेलू नौकर रामलाल को कथानायक बनाया गया है। इसमें सामान्य वर्ग के प्रति कथाकार की सहानुभूति का पता चलता है। कथा प्रथम पुरुष में कही गई है और कथाकार ही कथावाचक है। इस शिल्प को अपनाने से कथाप्रवाह में एक रोचकता आ गई है और उपन्यास पाठक को अपने साथ ले चलने में सफल होता है। रामलाल अथवा रमला कथाकर का परिवारिक नौकर है जो आरंभ से ही अपनी कार्य-तत्परता का परिचय देता है। कथावाचक उससे प्रभावित होता है, उस पर भरोसा करता है। धीरे-धीरे वह परिवार का सदस्य जैसा हो जाता है, सभी उसे चाहते हैं। वह लंबी कहानियाँ भी सुनाना जानता है। रामलाल छोटी जाति का था, इसलिए उससे लेखक की निकटता को कुछ लोग पसन्द नहीं करते थे। पर ईमानदारी की परीक्षा में वह खरा उतरता है।

घर की बेटी मुन्नी के विवाह की तैयारियां चल रही हैं और तभी डाकुओं का आक्रमण होता है। स्वामिभक्त रामलाल उनसे संघर्ष करता है और एक डाकू मार गिराता है जिसका सिर डकैत काटकर अपने साथ ले जाते हैं ताकि कोई पहचान न सके। पर यहीं से कथा नया मोड़ लेती है। रामलाल को वीरता के लिए पुरस्कृत होना चाहिए था। जो डाकू मारा गया, उसके शरीर पर जनेऊ था। इसके लिए रामलाल को प्रायश्चित करना है। मुन्नी के विवाह के अवसर पर बाराती रामलाल पर ब्रह्महत्या का दोषारोपण करते हुए कहते हैं कि जब वह घर से हट जायेगा तभी हम

भोज में आएंगे। रामलाल स्थिति को समझ जाता है और जो दो रुपये किसी तरह जोड़कर रखे थे, उन्हें मुन्नी को देकर चला जाता है। लौटकर फिर काम में लगता है और इस बीच विवाह भी होता है पर वह पूरा प्रसन्न नहीं। ब्रह्महत्या के प्रवाद में रामलाल दूसरे गाँव चला जाता है। उसमें गुलाबसिंह के प्रति स्वाभाविक आक्रोश है। उपन्यास के अन्त में सियारामशरण ने एक अध्यापक का प्रवेश कराया है जो गाँधीवादी है, लंबे वक्तव्य देता है। यहीं पता चलता है कि पुलिस ने रामलाल को किसी अपराध में पकड़ लिया है। रामलाल पर मुकदमा चलता है कि उसने डाकुओं का साथ दिया। उसे कारावास दंड मिला। वह अस्वस्थ रहने लगा और उसकी मृत्यु हो गई।

'अंतिम आकांक्षा' के कथा-विन्यास में सियारामशरण गुप्त ने यथार्थ जीवन से जो घटनाएँ प्राप्त की हैं, उन्हें जोड़ने के लिए कल्पना का सहारा लिया है। पर उनका कौशल यह कि वे सब कुछ विश्वसनीय ढंग से प्रस्तुत करना चाहते हैं। पिछड़ी जाति के एक सामान्य व्यक्ति को उपन्यास का नायक बनाकर कथाकार ने अपनी सर्वोदयी समाजवादी दृष्टि स्पष्ट की है। रामलाल जैसा साधारण व्यक्ति अपने कार्य में कुशल है, उसमें सजग कर्त्तव्य-बोध है और सबसे बड़ी बात यह कि उसके भीतर का मनुष्य हर दृष्टि से सराहनीय है। अपने कार्यों से वह कथाकार के परिवार का सदस्य बन जाता है भावात्मक रूप से जुड़ जाता है। इसका प्रमाण यह कि जब उसे पता चलता है कि मुन्नी की बारात के लोग उसकी उपस्थिति से अप्रसन्न हैं, तब वह घर से चला जाता है। लौटता है तो उसी निष्ठा के साथ। पर जब वह दूसरी बार अपने मालिक का स्थान छोड़ता है तो उसमें अन्य कारक भी हैं। रामलाल ने विवाह किया, पर प्रसन्नता नहीं मिली। गुलाबसिंह उसके जीवन की शान्ति भंग कर देता है क्योंकि रनिया उसी के पास चली गई है। रामलाल का डाकुओं के साथ एकाध बार जाना गुलाबसिंह के लिए प्रतिकार भावना से परिचालित है। पर इस स्थिति में भी उसका मनुष्य जीवित है, वह डकैत नहीं बनता। रामलाल का अपना चरित्र है–स्वामी के लिए डाकुओं से संघर्ष, वंशीधर के पुत्र को कुएँ से निकालना, हरवा चमार पर किए गए अत्याचारों का विरोध। विडम्बना यह कि उस पर ब्रह्महत्या का दोष लगता है और असली डाकू के न पकड़े जाने पर वह ही जेल भेज दिया जाता है। रामलाल इतना वत्सल कि मुन्नी से मिलने उसकी ससुराल जाता है। उपन्यास के अन्त में कथाकार से रामलाल की भेंट जेल में होती है, जहाँ रामलाल कैद है। वह भावुक हो जाता है और इसी के बाद समाप्त हो जाता है। रामलाल के रूप में सियारामशरण गुप्त पिछड़ी जाति के व्यक्ति को मानवीय गुणों से सम्पन्न करना चाहते हैं।

'अन्तिम आकांक्षा' उपन्यास में ग्रामजीवन के अन्धविश्वास भी तेज़ी से उभरे हैं। छोटी जातियों का अपमान होता है। जमीदार-महाजन शोषण करते हैं। अध्यापकजी

के माध्यम से कथाकार ने अपने समय पर तीखी टिप्पणियां की हैं – पाखंड, भ्रष्टाचार, पुलिस के कारनामे, विचित्र न्याय व्यवस्था, डाकू समस्या आदि। स्वतंत्रता की बात वे उत्साह से करते हैं, गाँधीजी के भक्त हैं। वे सामान्यजन के साथ हैं, कहते हैं: 'इन उपेक्षितों, हीनों और अछूतों को हमें भी मनुष्य की दृष्टि से देखना चाहिए। भगवान ने इन्हें भी मनुष्य बनाया है। यदि मनुष्यत्व खोकर आज वे पतित और भ्रष्ट हो रहे हैं तो इसके पापभागी हमी हैं। समाज के दबे-पिछड़े वर्ग में विद्रोह की भावना जन्म लेती है, जिसका प्रतीक है रामलाल, जो ट्रेजिडी का नायक है। कथावाचक हरिनाथ गाँधीवादी हैं, अध्यापकजी की तरह। वे जातिवाद का विरोध करते हैं। कथा सुनाते हुए उनकी सहानुभूति बराबर सामान्यजन के साथ है। वे सामाजिक परिवर्तन चाहते हैं जिससे सियारामशरण गुप्त की प्रतिबद्धता की झलक मिलती है।

'अन्तिम आकांक्षा' में भावुकता के स्थल हैं, कई बार कविता जैसे, विशेषतया रामलाल और कथावाचक में। पर सियारामशरण की दृष्टि ग्रामजीवन के यथार्थ पर है– अन्धविश्वासों से घिरा, नौकरशाही का षडयंत्र, पुलिस के अत्याचार, घृणित जातिवाद, ऊँच-नीच का अन्तर आदि। रामलाल व्यक्ति नहीं, वह समाज के पिछड़े वर्ग का प्रतिनिधि है जिसे निरन्तर संघर्ष करना है और अन्त में शहीद। उपन्यास को दुःखान्त बनाने के मूल में उपन्यासकार का प्रयोजन है–समाज की भयावह स्थिति का अहसास कराना। रामलाल निर्दोष होकर भी समाज की प्रताड़ना सहता है, समाप्त हो जाता है। तथाकथित ऊँचे तबके के लोग अनेक बुराइयों से घिरकर भी साफ बच निकलते हैं जबकि रामलाल कष्ट सहता है। अध्यापक जी कहते हैं: 'वर्ण की श्रेष्ठता ही हमारे लिए सब कुछ है, उसके सामने सच्ची मनुष्यता का मूल्य हमारी दृष्टि में कुछ नहीं। जब तक हमारा अन्ध संस्कार दूर नहीं होगा, तब तक हममें मनुष्यता का विकास नहीं हो सकता।' 'अन्तिम आकांक्षा' उपन्यास प्रथम उपन्यास 'गोद' का प्रौढ़तर विकास है।

'नारी' (१९३७) सियारामशरण गुप्त का एक ऐसा उपन्यास है जिसमें भारतीय नारी को प्रमुखता मिली है। वास्तविकता यह कि उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में जिस नवजागरण को गति मिली, उसमें यह स्वीकार किया गया कि भारतीय नारी की मुक्ति से ही देश का सामाजिक-सांस्कृतिक विकास तेजी से हो सकता है। रवीन्द्रनाथ से प्रेरणा पाकर कवियों ने नारी-पात्रों को प्रमुखता दी और नायिका-प्रधान काव्य भी रचे गए, जैसे प्रियप्रवास, साकेत, कामायनी आदि। कथासाहित्य में भी नारी अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान पाने लगी। 'नारी' उपन्यास के प्रथम वाक्य में ही ग्राम-नारी जमनाबाई का प्रयोग हुआ है जो कथा में मुख्य भूमिका प्राप्त करती है। जमुना का पति वृन्दा गाँव के कई लोगों की तरह कलकत्ता चला जाता है, नौकरी करने। उपन्यास रोचक ढंग से आरंभ होता है। अरसे बाद डाकिया पैकेट दे जाता है तो जमना समझती है

वृन्दा का पत्र है, पर बेटा हरलाल (हल्ला) बताता है कि यह पंचांग तो उसी ने मंगाया था। सियारामशरणजी ने गाँव की एक ऐसी समस्या ली है जो अपने साथ कई समस्याएं लाती है। रोजी-रोटी की तलाश में गाँव के लोग कलकत्ता, बम्बई या किसी ऐसे ही महानगर चले जाते हैं और परिवार गाँव में उनकी प्रतीक्षा करता है। यह एक मानवीय समस्या है, पर मनुष्य दर-बदर भटकने के लिए विवश है, पेट की खातिर। परदेसी बना कर पूरा जीवन बिता देते हैं। बुजुर्ग की टिप्पणी है: 'घर की गऊमाता की सेवा तो करेंगे नहीं, बाहर जाकर दूसरे की जूती के चाकर बनेंगे। धिक्कार है, अब के इन नासमझ लड़कों को।' किसान का मजदूर हो जाना आम बात है जिसे लेकर प्रेमचन्द ने 'गोदान' जैसा महाकाव्यात्मक उपन्यास लिखा-भारतीय किसान की संघर्षगाथा।

वृन्दा अपने गाँव के एक साथी के साथ कलकत्ता चला जाता है, जहाँ उसे एक कारखाने में नौकरी मिल जाती है। शुरू में दो-चार चिट्ठियां आईं फिर सन्नाटा। ससुर का निधन हो जाने पर वृन्दा अपने बेटे के साथ एक विचित्र प्रकार की असुरक्षा में रहने लगी। बाहर से ठीक लगता था, पर भीतर-भीतर टूटन। माँ-बेटे में बातचीत होती है। जमुना सपने में देखती है कि उसके पति वृन्दा ने दूसरी और कोई रख ली है। फिर भी वह पुरानी स्मृतियों में जीती है। तभी उपन्यास में एक अन्य पुरुष पात्र का प्रवेश होता है, जो मंत्रविद्या का व्यक्ति है और विधुर है। यही अजीत वृन्दा के निकट आना चाहता है। इस बीच जगराम नाम का व्यक्ति जमुना को झूठी सूचना देता है कि वृन्दा ने नया घर बसा लिया है। कथा में गति लाने के लिए उपन्यासकार आकस्मिक घटनाओं की नियोजना करता है। जमुना का बेटा हल्ली घर से चला जाता है और अजीत के प्रयत्न से लौटता है। इधर गाँव के षडयन्त्र हैं कि गाँव का महाजन मोतीलाल चौधरी-माते सूद के तौर पर जमुना की ज़मीन हड़प लेना चाहता है। यहाँ भी अजीत उसकी सहायता करता है और जमुना उसके साथ घर बसाना चाहती है। वृन्दा का एक पत्र कलकत्ता से आता है जो हीरा के हाथ पड़ जाता है। अपनी ओर से वह उत्तर लिखा देता है कि हल्ली का अंत हो चुका है और जमुना दूसरे के साथ रहती है। वृन्दा गाँव लौटता है तो शहर में ही माते उससे झूठी बातें कहकर, कर्ज़ के बदले में कागज लिखा लेता है। दुःखी होकर वृन्दा कलकत्ता लौट जाता है। जमुना को जब पता चलता है तो उसे दुख होता है क्योंकि वह निर्दोष है। उपन्यास के अंत में जमुना अकेले रहने का निर्णय लेती है: 'उसे कोई भय नहीं है, कोई चिन्ता नहीं है।'

'नारी' का कथानक सरल नहीं है और उपन्यास ने इसमें कई वर्तुल पैदा किये हैं जिसमें आकस्मिकताओं की भी भूमिका है। केन्द्र में जमुना है जिसके इर्द-गिर्द कथा चक्कर लगाती है। पति वृन्दा कलकत्ता में, ससुर का निधन और वह बेटे हल्ली

के सहारे जीवन पार करती है। हल्ली का चले जाना और अजीत के प्रयत्न से मिल जाना परिवार की जटिल स्थिति का संकेत करता है। पर यही हल्ली उपन्यास के अंत में परिपक्व व्यावहारिक दृष्टि का परिचय देता है। जमुना को सियारामशरण एक त्यागमयी नारी के रूप में चित्रित करते हैं—ग्रामीण नारी का आदर्श। कथाकार ने जमुना को जिस आंतरिक व्यथा से गुज़ारा है, उसमें वह अकेली है। उपन्यास के अंत में प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त' नाटक की देवसेना की तरह निर्णय है कि वह अकेली ही रहेगी: 'कुछ अकेले आज ही नहीं जा रही थी। वह चिरन्तन नारी युग-युग के अन्धकार में, उसे तुच्छ करके चिरकाल से इसी तरह आगे बढ़ी जा रही है—दुख और विपत्ति के इस अंधियारे पथ को इसी तरह पददलित करके।'

सियारामशरण गुप्त कुछ पात्रों को प्रमुखता देते हैं, इसमें सन्देह नहीं। जैसे अजीत को एक उपकारी व्यक्ति के रूप में चित्रित करना। वह जमुना की हर प्रकार से सहायता करता है। ज़मीन हाथ से न निकल जाय, इसलिए महाजनों से टकराता है। सियारामशरण जी ने ग्रामजीवन की कथा ली है और वहाँ की कुछ समस्याओं की ओर इशारा किया है। यहाँ भी अंधविश्वास है कि मंत्र-कला जानने वाले अजीत पर गांव के लोग विश्वास करते हैं। समाज का दीन-हीन वर्ग हर प्रकार के शोषण का शिकार है। महाजन मोतीलाल जमना की ज़मीन ज़ायदाद हड़प जाना चाहते हैं। कचहरी के अपने दांव-पेंच हैं जिसे मुंशीजी की बातों में देखा जा सकता है। वकीलों की विचित्र दुनिया है – सच को झूठ, झूठ को सच। गाँव का किसान शहर में मजदूर बनने को विवश है और इसका दंड भोगता है, पूरा परिवार। गाँव के मदरसे की भी अजीब हालत, यहाँ भी ऊँच-नीच का भेद। उसे जमुना के बेटे हल्ली के माध्यम से जाना जा सकता है। जमुना भारतीय ग्राम-नारी का प्रतिनिधित्व करती है संघर्षरत, समर्पिता, त्यागमयी, वत्सल और संकल्पी। अजीत को लेकर वह द्वन्द्व से गुजरती है, पर उसे भी पार कर जाती है और अंत में विजयी होता है उसका व्यक्तित्व—अकेले भी जीवन काटा जा सकता है। जमुना विद्रोह नहीं करती, आधुनिक नारी की तरह, पर उसका अपना चरित्र है – सराहनीय।

'नारी' उपन्यास का कथानक यथार्थ की भूमि पर है, इसमें सन्देह नहीं। उसके ग्राम-परिवेश में जीवन का वास्तविकताएं भी उभरी हैं। पर सियारामशरण गुप्त अपने मनोवांछित आशय की स्थापना के लिए पात्रों को एक विशेष रूप देते हैं और इस उपन्यास में तो घटनाओं की आकस्मिकता भी पर्याप्त है, जैसे हीरा का वृन्दा को पत्र लिखना कि जमुना ने नया घर बसा लिया है, या बिना खोजखबर लिए वृन्दा का कलकत्ता लौट जाना आदि। उपन्यास का अंत आदर्शवादी ढंग का है-जमुना-अजीत का एक सूत्र में न बंधना। जैसे भारतीय ग्राम-नारी सब कुछ अकेले सहन करने के लिए विवश है। 'नारी' एक प्रौढ़ रचना है जिसमें छोटे-छोटे प्रासंगिक वार्तालापों के

सहारे कथा को गति दी गई है, नाटकीय संवाद का उपयोग। गाँव का परिवेश अपने मुहावरों के साथ यहाँ उभरा है, जिससे सियारामशरण की ग्राम-जीवन की पकड़ का पता चलता है। 'नारी' निश्चय ही उनकी प्रतिनिधि रचनाओं में है, प्रभावी और विश्वसनीय जिसमें ग्राम-जीवन का संघर्ष चित्रित है।

कहानी कहने में सियारामशरण गुप्त की रुचि रही है और इसका प्रमाण है उनके आख्यान अथवा कथा-काव्य पर यहाँ वर्णनात्मकता का स्थान क्रमशः संवेदन और विचार को मिलता है जिसके सहारे वे किसी आशय का प्रतिपादन करना चाहते हैं। 'मानुषी' उनका इकलौता कहानी संकलन है जिसका प्रकाशन १९३३ में हुआ, अर्थात् कहानियाँ आरम्भिक दौर में लिखी गईं। 'मानुषी' में कुल आठ कहानियाँ हैं: मानुषी, कष्ट का प्रतिदान, रुपये की समाधि, पथ में से, बैल की बिक्री, त्याग, कोटर और कुटीर तथा काकी। कुछ कहानियों के शीर्षक प्रेमचन्द की याद दिलाते हैं—दो बैलों की कथा, बूढ़ी काकी आदि। सियारामशरण का मुख्य माध्यम कविता है और जयशंकर प्रसाद की तरह जब वे कहानी के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तब भी उनका कवि रूप सजग रहता है। कहानियों का सम्बन्ध प्रायः सामान्य-जन से है और कहानीकार ने परिचित ग्राम परिवेश को लिया है।

कहानियों के कथानक पर संक्षेप में विचार करने से ज्ञात होता है कि सियारामशरण गुप्त किसी आशय का संकेत करना चाहते हैं। 'मानुषी' के आरंभ में पौराणिक चरित्र शंकर-पार्वती का वार्तालाप है जिसमें नर-लोक की चर्चा है। फिर मूल कथा है जो ग्राम-जीवन की है। सियारामशरण के शब्दों में यथार्थ यह: 'पिता की मृत्यु के बाद मनोहरलाल ने जिस पथ का अवलम्ब किया, वह मनोहर तो था परन्तु वह मनोहरता बनाये हुए नागरिक पथ की नहीं, वन्य पथ की थी, जिसमें आस-पास की पुनीत नैसर्गिक माधुरी के साथ-साथ कंकड़, कंटक, खड्ड और हिंस्र पथ भी कम नहीं होते।' मनोहरलाल गाँव के ग़रीब मुलू अहीर की रक्षा ज़मीदार के शोषण से करता है यद्यपि संघर्ष में वह अकेला पड़ जाता है। आश्चर्य यह कि मुलू ही उस पर मुकदमा करता है और मनोहर को एक माह का कारावास। पत्नी श्यामा पतिव्रता का धर्म निभाती है, पर मनोहरलाल का निधन। फिर श्यामा और मौसी की बातचीत। समापन फिर शंकर-पार्वती के वार्तालाप से। कहानी में गाँव का यथार्थ है और संघर्ष करते आदर्श चरित्र मनोहरलाल का करुण निधन। श्यामा त्यागमयी नारी है जिसे शंकर की भी सराहना मिली।

'कष्ट का प्रतिदान' परोपकारी रामनारायण के माध्यम से एक ईश्वरवादी की कहानी है जिसमें आकस्मिकताएं हैं जैसे परिवार का पहले उतर जाना और फिर रेल दुर्घटना। एक नियतिवाद इस कहानी को चलाता है। 'रुपये की समाधि' शीर्षक से व्यंग्य का आभास मिलता है, पर है वह विचित्र कथा, भूत-प्रेत से जुड़ी। देवी कारीगर

ताड़ी पियक्कड़ होने के कारण प्रेत रूप में अवतरित होता है और दीवाल में चुने गए रुपये को खोजना चाहता है। यह एक कल्पित कहानी है जिसमें ताड़ी के व्यसन का विरोध है। 'पथ में से' का आरंभ कहानीकार और रामदेव की बातचीत से होता है। यहाँ असहयोग आन्दोलन की चर्चा है जिसकी आचार-संहिता आसान नहीं। कहानीकार रामदेव के साथ गायिकाओं के कोठे पर जाने से मना कर देता है–एक प्रकार का हृदय-परिवर्तन। 'बैल की बिक्री' प्रभावी कहानी है जो ग्राम-जीवन के शोषण को आधार बनाकर लिखी गई है। सेठ ज्वालाप्रसाद ऐसे महाजन जो किसानों को चूसते थे, सूद के नाम पर। मोहन उनका कर्ज न दे पाया। ऊपर से निकम्मे बेटे शिबू की चिन्ता। एक बैल भी जाता रहा, बैलगाड़ी की मजूरी भी संभव नहीं। पर युवापीढ़ी का शिबू महाजन का प्रतिवाद करता है। बैल बेंचकर आते हुए वह जिन डाकुओं से घिरता है उनमें ज्वालाप्रसाद महाजन भी। शिबू कर्ज के पैसे तो दे देता है, पर डाकू महाजन से छीन लेते हैं। 'बैल की बिक्री' कहानी प्रेमचन्द की यथार्थवादी परम्परा का स्मरण दिलाती है।

'त्याग' कहानी स्वतंत्रता आन्दोलन से जुड़ी है–राष्ट्रपति की गिरफ्तारी पर हड़ताल की घोषणा। इसमें महात्मा गाँधी की यात्रा का भी उल्लेख है, फिर सत्याग्रह संग्राम। बालक पर भी बापू के व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ता है और वह दाख नहीं खाता। 'त्याग' की तरह 'काकी' भी लघु कहानी है जिसमें बालक श्याम की भावनाओं का चित्रण हुआ है। उमा काकी के देहावसान की बात वह समझ नहीं पाता और पतंग के सहारे उन्हें लौटा लाना चाहता है। 'कोटर और कुटीर' 'मानुषी' की उल्लेखनीय कहानी है जहाँ प्रतीकों का उपयोग किया गया है जिसमें तुलसी के चातक स्वाती प्रतीक की प्रेरणा भी हो सकती है। बुद्धन के कच्चे खपरैल वाले घर में चातक-पुत्र के विश्राम योग्य एक नीम का वृक्ष था। नीचे पक्षाघात से त्रस्त बुद्धन, ऊपर चातक-पुत्र। उसका बेटा गोकुल मजूरी करने गया था, बड़ी रात लौटा, खाली हाथ। गोकुल ने बात बताई कि आज रास्ते में उसे रुपयों का बटुआ मिला, जो उसने लौटा दिया। इनाम के पैसे भी नहीं लिए। बुद्धन बेटे की इस ईमानदारी से अभिभूत हो गया। डाल पर बैठा पुत्र द्रवित और फिर वर्षा ही वर्षा। यह है ईमान की कथा।

कहानी सियारामशरण का मुख्य माध्यम नहीं है, इसकी तुलना में उन्हें उपन्यासों में अधिक सफल कहा जा सकता है। पर उन्होंने 'बैल की ब्रिक्री' जैसी यथार्थवादी कहानियाँ लिखी हैं। 'कोटर और कुटीर' में प्रतीकात्मकता के सहारे मूल्य-चर्चा है जिसमें गरीब गोकुल भूखा रहकर भी अपनी ईमानदारी का प्रमाण देता है और अपने पिता की परम्परा निभाता है। पिता बुद्धन कहता है: 'दो दिन की भूख हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। जिस तरह चातक अपने प्राण देकर भी मेघ के सिवा किसी दूसरे का जल लेने पर व्रत नहीं तोड़ता उसी तरह तू भी ईमानदारी की टेक न छोड़ना।' तुलसी के शब्दों में: चातक सुतहि पढ़ावही, आन नीर मति लेहु/मम कुल यही स्वभाव है, स्वाति बूंद चित देहु। 'मानुषी' की कहानियां आकार में प्रायः छोटी

हैं और उन्हें लघुकथा भी कहा जा सकता है। इनमें पूरा विन्यास हो पाना संभव नहीं। पर जहाँ किंचित विस्तार है वहाँ सियारामशरणजी का आशय प्रमुख रूप से उभरकर आया है, जैसे कहानियाँ किसी निश्चित उद्देश्य तक पहुँचना चाहती हैं।

सियारामशरण गुप्त का कथा-संसार जिसमें तीन उपन्यास और एक कहानी संकलन सम्मिलित हैं, उनके कवि-रूप का विस्तार है। कविता में भी वे यथार्थ को स्वीकारते चलते हैं, निम्न वर्ग की ओर उनकी दृष्टि जाती है। कथाकार के रूप में वे ग्राम-जीवन के कुछ प्रश्नों को लेते हैं और गाँधीवादी ढंग से कुछ समाधान भी पाना चाहते हैं। यहाँ उनका संवेदन निश्चय ही सजग-सचेत और उनकी दृष्टि भाव-प्रतिपादन पर अधिक है, शिल्प-विधान पर कम।

# निबंध तथा अन्य रचनाएं

कविता, उपन्यास, कहानी के अतिरिक्त सियारामशरण का स्फुट लेखन है। इसमें उनका एक निबन्ध संकलन है–'झूठ-सच' जिसका प्रकाशन १९४० ई. में हुआ, यद्यपि ये समय-समय पर लिखे जाते रहे हैं। १९३२ में प्रकाशित 'पुण्यपर्व' उनका एकमात्र गद्य-नाटक है जिसे आरंभिक कृतियों में गिना जायगा। इसके अतिरिक्त उनके तीन अनुवाद हैं: गीता-संवाद (१९४८), हमारी प्रार्थना (१९५२) तथा बुद्धवचन (१९५६)। लंबी अवधि में फैले 'झूठ-सच' के निबन्ध कई प्रकार के भाव-विचार से गुजरते हैं और निबन्धकार ने इसमें कुछ प्रयोग भी किए हैं। यों भी निबन्ध अपेक्षाकृत अधिक निर्बन्ध विधा है जिसमें आधुनिक युग में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, विवेकी राय, कुबेरनाथ राय जैसे निबंधकारों ने योगदान किया है।

सियारामशरण गुप्त का व्यक्तित्व छायावादियों की तरह रूमानी नहीं है, पर जिसे 'व्यक्तित्व का खुलापन' अथवा अकुण्ठित भाव कहते हैं, वह उनमें पर्याप्त मात्रा में है। इसीलिए निबंधों में वे बहुत सहज भूमि पर सर्जनरत दिखाई देते हैं। जब वे प्रारम्भिक भूमिका में कहते हैं कि सब झूठ-झूठ नहीं होते, सब सच–सच नहीं होते, तो वे जीवन के भीतर प्रवेश करना तो चाहते ही हैं, संवदेन के साथ अपनी कल्पना को भी थोड़ी छूट देने चाहते हैं। 'झूठ-सच' के निबन्ध में लेखक कहीं संस्मरणात्मक हो उठता है, स्मृति में उस क्षण अथवा व्यक्ति विशेष को लौटा लाने का प्रयत्न, जैसे मुंशी अजमेरीजी। यहाँ कथा का पुट भी मिल जाता है। कुछ निबंध कवि-सुलभ भावनामयता से निर्मित हुए हैं, जो तत्व उनके गद्य में भी मौजूद है। जैसे 'अपूर्ण' में–मेरे ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर सप्तमी के चन्द्र की यह चाँदनी छिटकी पड़ी है। ऊपर से नीचे तक हल्के वसन्त रंग की होली खेलकर इसने मुझे सराबोर कर दिया है।' सियारामशरण ऐसे अवसरों पर प्रकृति का उपयोग करना जानते हैं। गाँधीवादी विचारधारा के प्रति वे समर्पित हैं और इसे उनके चिन्तन प्रधान निबंधों में देखा जा सकता है। जीवन और रचना के प्रश्नों पर वे विचार करते हैं। इस प्रकार सियारामशरण का निबंध-संसार उनके सहज व्यक्तित्व का प्रकाशन कहा जा सकता है, जहाँ वे कई दिशाओं में जाते हैं।

'झूठ-सच' में अट्ठाइस निबंध हैं जिनके शीर्षकों से उनकी विविधता का बोध होता है: बहस की बात, एक शीर्षक, ऋणी, मनुष्य की आयु दो सौ वर्ष, अन्य भाषा

का मोह, अपूर्ण, एक दिन, बाल्य-स्मृति, साहित्य और राजनीतिक, मुंशीराम, शुष्को वृक्षः, छुट्टी, साहित्य की क्लिष्टता, आशु रचना, घोड़ाशाही, छत पर घूंघट में, कवि-चर्चा, निज कवित्त, वर की बात, धन्यवाद, साल का नया दिन, अबोध, हिमालय की झलक, कवि की वेश-भूषा, उसकी बोली, नया संस्कार और झूठ-सच। सुविधा के लिए इन निबंधों को कुछ वर्गों मे भी रखकर देखा जा सकता है–जैसे संस्मरणात्मक, आत्मपरक, वर्णनात्मक, कथाश्रित, विचारप्रधान, भावनात्मक आदि। पर वास्तविकता यह भी है कि कई बार इनमें एक से अधिक पद्धतियाँ समाहित हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चिन्तामणि के निबंधों की संक्षिप्त भूमिका–'निवेदन,' में कहा हैः 'यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को भी साथ लेकर।' सांस्कृतिक दृष्टि से सम्पन्न आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध विचार और भाव की संवेदन मैत्री का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। सियारामशरण गुप्त के निबंधों में वैयक्तिकता के साथ उनकी बौद्धिक जिज्ञासाएं और भावात्मक प्रतिक्रियाएं व्यक्त हुई हैं।

संस्मरणात्मक होने में पूर्व स्मृति का सहारा लेना होता है और कई बार कठिनाई यह कि हम अपने विषय में इतना सजग-सचेत हो जायँ कि जिसका स्मरण किया जा रहा है, वह परिपार्श्व में चला जाय और हम हावी हो जायँ ।' सियारामशरण गुप्त 'बाल्य स्मृति' में रचना की आरंभिक प्रेरणा का उल्लेख करते हैं। महालक्ष्मी पूजन के लिए कुम्हार के यहाँ से मिट्टी का हाथी आता था। कवि उसमें प्राण संचार की बात सोचते हुए कहता हैः 'साहित्य की मिट्टी लेकर उसमें प्राण-संचार करने की बात कुछ इसी तरह आज भी मेरे मन में चल रही है।' इसी में दूसरा प्रसंग है राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की प्रकाशित रचना देखकर, स्वयं को भी इसी रूप में देखने का। कृतज्ञ भाव से यह स्वीकृति कि कवि-अग्रज ने आरंभिक कविताओं को संवारा। मुंशी अजमेरीजी गुप्त-परिवार के अभिन्न अंग रहे हैं और उनका स्मरण करते हुए सियारामशरणजी भावुक होते हैं कि कैसे वे सबको अपनी ममता देते थे। अग्रज मैथिलीशरण गुप्त की तरह वे भी कवि-गुरु थे, रचनाओं को सुधारते थे। मुंशीजी जन्मना मुसलमान होकर भी संस्कारतः वैष्णव थे। प्रायः लोगों को विश्वास न होता था कि वे मुसलमान हैं। हिन्दू धर्म में उनकी आस्था ऐसी अटल थी। भक्तिरस की कविता से तुरन्त ही उन्हें अश्रुपात होने लगता था।' सियारामशरणजी ने मुंशीजी के सरस कोमल हृदय के साथ उनके 'प्रत्युत्पन्नमतित्व' और 'साहित्यमर्मज्ञता' का विशेष उल्लेख किया है। श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए व्यक्ति के गुणों को रेखांकित करना सही संस्मरण है।

आत्मपरकता निबंधों की ऐसी प्रवृत्ति है जो उसे सर्जनात्मकता देती है, उसका एक स्वतंत्र व्यक्तित्व बनता है। सियारामशरण ने उन्हें रचने में कवि-प्रतिभा, संवेदनशीलता और कल्पना-क्षमता का उपयोग भी किया है। यहाँ निबंध एक नयी दीप्ति पाते हैं।

खेत की मेड़ पर बबूल के सूखे वृक्ष को देखकर कादम्बरी के रचयिता बाणभट्ट का स्मरण हो आता है जिसके कनिष्ठ पुत्र ने पिता की अपूर्ण रचनाएं पूरी की थीं (शुष्को वृक्षः)। 'हिमालय की झलक' में वे कल्पना करते हैं: 'सोच रहा हूँ वहाँ के उस सुदूर प्रान्त मार्ग में आकाश मेघों से भरा होगा। यहाँ की तरह मेघ नीचे उतरकर हमारे शरीर को वहाँ नहीं छूते।' और इसी के बीच अलकापुरी का स्मरणः वधुओं के हाथ में लीला-कमल, अलकों में बालकुन्द, लोध्र-पुष्प-पराग से रंजित मुखमंडल, कर्णों में शिरीष कुसुम – सब कुछ कालिदास का स्मरण कराता हुआ। इससे निबंधकार की अध्ययनशीलता का भी पता चलता है। वर्णनात्मकता के बीच भावात्मक प्रसंगों का प्रवेश कराने की क्षमता इन निबंधों को नई सर्जनशीलता से सम्पन्न करती है। 'वर की बात' छोटा-सा निबंध है, पर भाव-सम्पन्नः 'उत्सव इसीलिए सुन्दर है कि वह थोड़े समय में ही सम्पन्न हो जाता है। पर्व इसलिए पवित्र कि हर दिन नहीं आता।'

निबंध में इतनी स्वतंत्रता है कि वह कई विधाओं का संस्पर्श कर सकता है। इन्हें लिखते हुए सियारामशरण कथा-अंशों का उपयोग करते हैं जिससे रोचकता आती है क्योंकि पाठक कहानी का आस्वाद पाता है। किसी घटना विशेष को लेकर उनकी प्रतिक्रियाएं निबंध का रूप लेती हैं। सम्पादक महोदय धन्यवादपूर्वक सामग्री लौटा देते हैं और लेखक की टिप्पणीः 'उनके धन्यवाद को निरर्थक नहीं कह सकता। यह एक ऐसा सिक्का है, जो परस्पर विरोधी देशों में एक-सा चल सकता।' तथाकथित आधुनिक सभ्यता में जिन शब्दों ने अतिरिक्त औपचारिकता में अपने अर्थ खो दिए है, उनमें 'धन्यवाद' भी है। महिलाएं घूंघट में जा रही है और सियारामशरणजी की प्रतिक्रिया है: 'कितने कौशल में, कितने आडम्बर में, कितनी बनावट में हमने अपने को छिपा रखा है, यह हम तक नहीं जानते' (घूंघट में)। अपने मित्र को वे अपनी एक बढ़िया रचना पढ़ने को देते हैं। उनकी प्रसन्नता पर निबन्धकार को भवभूति की समानधर्मिता वाली बात का स्मरण हो जाता है, पर निबंध के अंत में मोहभंग की स्थिति है (आशु रचना)। 'एक दिन' निबंध घटनापरक है, पर इसकी टिप्पणियाँ विचारणीय हैं: 'संसार में हम सबके सब व्यवसायी हैं, पर सब व्यवसाय ऐसे नहीं होते कि इस हाथ से ग्राहक को कुछ देकर दूसरे हाथ से झट हमने उसका मूल्य ले लिया।' यहाँ वे लेखन की पीड़ा बताते हैं: जो लिखना था, वह नहीं लिखा जा सका। कवि अज्ञेय की तरहः 'है अभी कुछ और है जो कहा नहीं गया।' 'झूठ-सच' निबंध तो कहानी के शिल्प में ही लिखा गया है। सामने की खिड़की खोलकर सियारामशरणजी लिखने बैठे हैं और यहीं से बाहर के दृश्य देखते हैं। साधारण मजूर राज और पतिया की लंबी बातचीत की कल्पना निबंधकार करता है। मालिक हजारीलाल का भी प्रवेश होता है। बाद में इनकी भेंट सियारामशरण जी से भी होती है। मजूर-मजूरिन, काशीराम पतिया निबंधकार के मन-मस्तिष्क पर छा जाते हैं। कहानी

चलती रहती है जिसके कथावाचक स्वयं सियारामशरणजी हैं। पर अंत में रहस्य खुलता है कि पतिया अथवा रधिया मजूर राज अथवा काशीराम की बहिन है जिसे उसका पति गिरधारी बहुत कष्ट देता था। काशीराम की पीड़ा को लेखक समझता है, अपनी सहानुभूति देता है।

सियारामशरण गुप्त मूलतः कवि हैं इसलिए लेखन में भावात्मक प्रतिक्रियाएं स्वाभाविक हैं, पर 'झूठ-सच' में विचारात्मक निबंध भी पर्याप्त संख्या में हैं जिनसे चिन्तन-मनन का पता चलता है। वे परम्परा से परिचित हैं, लोक-जीवन की परख भी उनके पास है और अपने समय का अहसास भी। पर यथार्थ के बीच उनका आदर्शवाद बराबर झलकता है जिसे गाँधीवादी विचाराधारा की उपज कहना उचित होगा। साहित्य को लेकर वे कुछ मूलभूत प्रश्नों पर विचार करते हैं, जैसे-'कवि-चर्चा' निबंध में वे कहते हैं कि बालक में कोई निश्छल कवि वास करता है। पर आनन्द हमें आशान्वित करता है। वे कविता का व्यापक प्रसार मानते हैं: 'हमारी छोटी सीमा टूटती है और हम विराट की ओर बढ़ते हैं।' साहित्य के प्रश्नों पर सियारामशरणजी अकादमिक ढंग से नहीं, बल्कि सर्जक निबन्धकार के रूप में सोचते-विचारते हैं। साहित्य और राजनीति का प्रश्न हमारे समय में बहुचर्चित है। वे साहित्यकार की स्वतंत्रता का प्रश्न उठाते हैं और कहते हैं कि 'सत्ताधारियों के मन में लोभ होता है कि साहित्य उनकी अधीनता में रहे, उसके द्वारा उनकी स्तुति का गान हो। फलतः जहाँ-तहाँ दरबारी साहित्यिकों की सृष्टि होती है।' सियारामशरणजी इस चाटुकारिता का विरोध करते हुए साहित्य की दायित्वपूर्ण स्वतंत्र प्रकृति पर बल देते हैं। राजनीति क्षणजीवी है, साहित्य चिरकालिक। यह निबंध साहित्य की स्वायत्तता की प्रतिष्ठा करता है और इसे लेकर हिन्दी में पर्याप्त बहस चल चुकी है, विशेषतया नयी रचनाशीलता के समय में। 'साहित्य में क्लिष्टता' निबंध में भी सियारामशरण जी ने दरबारी प्रवृत्ति का विरोध करते हुए, रचना में सहजता का आग्रह किया है। 'कवि की वेश-भूषा' इस दृष्टि से एक रोचक निबंध है कि कालिदास–तुलसी से लेकर आज तक निरकुंश कवियों के लिए कोई पोशाक निश्चित करना आसान नहीं। कविता कवि की वाणी में है, उसकी वेश-भूषा में नहीं।

सियारामशरण गुप्त राष्ट्रीय भावनाओं के कवि हैं और गाँधी के स्वदेशी सिद्धान्त को स्वीकारते हैं। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान को वे व्यापक संदर्भ में देखते हैं। सभी भारतीय भाषाओं की अपनी गरिमा, पर हिन्दी हम सबको जोड़ती है। हिन्दू से तात्पर्य हिन्द के निवासियों से है और हिन्दुस्तान मिली-जुली संस्कृति का बोध कराता है जिसके लिए इक़बाल ने कहा: 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा।' सियारामशरण गुप्त विदेशी भाषा-मोह की निन्दा करते हैं। व्यापक संदर्भ में देखते हुए वे कहते हैं कि अंग्रेज ने हमें भाषा से भी गुलाम बनाया और यही हमारी वास्तविक पराजय

थी। इस नकल-नवीसी से भारत हीनभावना से ग्रस्त हो गया। उन्होंने विशेष रूप से शिक्षित वर्ग की पराजित मनोवृत्ति पर तीखी टिप्पणी की है जो स्वभाषा से कट गया है। पर मुक्ति मातृभाषा में है। 'घोड़ाशाही' तंत्र-यंत्र युग पर व्यंग्य है। साहित्य के केन्द्र में मनुष्य है, इसे सभी स्वीकारते हैं। इसलिए सियारामशरणजी साहित्य के साथ जीवन पर भी विचार करते हैं। 'मनुष्य की आयु दो सौ वर्ष' निबंध में वे संसार को रंगशाला कहते हैं, पर वार्धक्य कष्ट देता है क्योंकि मृत्यु की पूर्व-सूचना है। विज्ञान ने कई चमत्कार किए हैं, मनुष्य की आयु बढ़ाई है, पर सार्थक जीवन जीकर चले जाना ही सही, क्योंकि दूसरे के लिए राह बनती है।

इस प्रकार सियारामशरणजी के निबंधों का मानवीय, सांस्कृतिक पक्ष समृद्ध है। वे सहज हैं और कवि के अनुभव से उपजे हैं: निरन्तर चलता महाभारत, रस कठोर भी होता है; सब कोमल पदार्थ सुस्वाद नहीं होते, चढ़ने का आनन्द उतर सकने में है; सत्य अपने स्वाभाविक रूप में मनोहर होता है; आशा जीवन है–निराशा मृत्यु, दरबारी सूर्य-चन्द्र का स्थान नहीं पाते, महत्त्व वहीं है जहाँ अन्धकार में प्रकाश हो, जैसे कृष्ण आदि। सियारामशरण गुप्त के निबंधों में उनका व्यक्तित्व समाहित है और वे अपने भाव-विचार को यहाँ संयोजित करके प्रस्तुत करना चाहते हैं। मार्मिक प्रसंग को भी वे सहज ढंग से कहने का प्रयत्न करते हैं और उनके निबन्ध निश्चित ही पठनीय बनते हैं।

'पुण्य-पर्व' सियारामशरण गुप्त का एकमात्र गद्य नाटक है जिसका प्रकाशन १९३२ ई. में हुआ और इस दृष्टि से इसे प्रथम चरण की रचनाओं में परिगणित किया जायेगा। 'पुण्य-पर्व' का कथानक राजधानी हस्तिनापुर एवं मृगचिरा ग्राम के राजप्रसाद और वन से सम्बद्ध है। सम्पूर्ण कथा तीन अंकों में विभाजित है और तीनों में दो-तीन दृश्य। घटनाओं का समय बुद्धदेव के पूर्व का है और नाटककार के समक्ष सांस्कृतिक आशय को व्यक्त करने की कामना है। प्रमुख पात्रों में इन्द्रप्रस्थ के राजा सुतसोम अथवा श्रुतसोम हैं जिन्हें बोधिसत्व सम्बोधन भी दिया गया है। उनकी रानी का नाम विशाखा है जिसकी दासियां है पूर्णा, उत्पला। सुतसोम का सहचर-सचिव यशोधन है। वाराणसी के निर्वासित राजा का नाम ब्रह्मदत्त है और किंकर, रसक उसके अनुचर हैं। नन्द एक गाथाकार ब्राह्मण है और सुभद्र उसका ब्रह्मचारी पुत्र।

नाटक का आरंभ नन्द के ब्रह्मचारी पुत्र सुभद्र और ब्रह्मदत्त के अनुचर किंकर के वार्तालाप से होता है जिससे आचार्य-कुल, गुरु-गरिमा के साथ दुष्ट नरखादक (ब्रह्मदत्त) का पता चलता है। किंकर सुभद्र को पकड़कर ले जाता है क्योंकि उसका उपयोग नर-बलि में होता है। सुतसोम विशाखा से भी नरखादक ब्रह्मदत्त की चर्चा करते हैं जो तक्षशिला में उनका सहपाठी था। सुतसोम निर्णय लेते हैं कि जनता की रक्षा के लिए वे हस्तिनापुर जायेंगे। ब्रह्मदत्त ने बलि के लिए कई लोग पकड़ रखे

हैं जिनमें सुभद्र भी है, पर वह सुतसोम को भी पकड़ना चाहता है। सोमवती अमावस्या को वह नर-यज्ञ करना चाहता है और उसे राजा सुतसोम का रक्त चाहिए। दूसरे अंक का आरंभ राजा सुतसोम और उनके सहचर सचिव विशाख के वार्तालाप से होता है जिसमें नरखादक ब्रह्मदत्त की दुष्टता की चर्चा है। एक कहता है कि ब्रह्मदत्त निष्ठुर है, उससे सावधान रहना ही उचित है। एक पथिक भी उसकी निर्ममता का उल्लेख करता है। कुछ लोग उसकी राक्षसी प्रवृत्तियों की चर्चा कहते हैं– काला शरीर, अंगारी आँखें, लम्बे दांत। इस बीच ब्रह्मदत्त और उनके अनुचर किंकर-रसक सुतसोम को पाना ही चाहते हैं। दो प्रहरी सोमवती के फीके-फीके उत्सव की बात करते हैं क्योंकि पिशाच ब्रह्मदत्त का आतंक है। कहते हैं पता नहीं राजेश्वर आएंगे भी या नहीं। रसक यशोधन से कहता है कि कुछ भी हो, राजेश्वर को नहीं बचाया जा सकता। दूसरे अंक के अंत में राजा सुतसोम और गाथाकार नन्द की बातचीत है जिसमें भी ब्रह्मदत्त का उल्लेख होता है। इस बीच किंकर आता है और स्वयं को क्षेत्रपाल बताते हुए, अपनी स्त्री के अपहरण के बहाने सुतसोम को दूर ले जाता है।

तीसरे अंक में राजा सुतसोम रस्सी से बंधे अचेतावस्था में पड़े हैं और सामने नरखादक ब्रह्मदत्त है। ब्रह्मदत्त प्रसन्न है कि उसका नरयज्ञ सम्पन्न होगा। किंकर की बात से पता चलता है कि सुतसोम के साथ एक सौ अन्य व्यक्ति भी पकड़े गए हैं। इस बीच सुतसोम को चेतना आती है और ब्रह्मदत्त अपनी कुटिल देवबलि का उद्देश्य बताता है। दोनों की लंबी बातचीत है जिनसे उनकी विरोधी जीवन-दृष्टियों का पता चलता है–दयावान सुतसोम और हिंसक ब्रह्मदत्त। ब्रह्मदत्त सुतसोम के बन्धन काट देता है, यह कहकर कि तुम भाग नहीं सकते। इधर विशाखा अपने पति को लेकर बहुत चिन्तित है और अपनी व्यथा पूर्णा से कहती है। तभी सुतसोम आते हैं और कहते हैं कि मैं मृत्यु के स्वागत के लिए तत्पर हूँ। नाटक के अंतिम दृश्य में सुतसोम दिए गए वचन के अनुसार ब्रह्मदत्त के पास लौट आता है। वह कहता है कि ब्रह्मदत्त तुम जैसे राजकुल सम्भूत और सुशिक्षा प्राप्त जन के लिए यह नृशंस व्यापार उचित नहीं है। जितने लोगों को तुमने पकड़ा है, उन सबको छोड़कर उनका आशीर्वाद लो और सदा के लिए इस कार्य से हाथ खींच लो। ब्रह्मदत्त कहता है कि नरयज्ञ के लिए राज-पाट को छोड़ दिया, पर यह कार्य नहीं। सुतसोम हिंसा की निन्दा करता है और ब्रह्मदत्त को अहिंसक होने की सलाह देता है। नाटक के अंत में ब्रह्मदत्त का हृदय-परिवर्तन होता है, वह सद्धर्म में दीक्षित हो जाता है, यशोधन भी सैनिकों के साथ पहुँच जाता है।

'पुण्य-पर्व' नाटक के निर्माण में दो प्रभाव दिखाई देते हैं। एक ओर बौद्धदर्शन की करुणा है, दूसरी ओर महात्मा गाँधी का अहिंसा-दर्शन। नर-बलि की जघन्य परम्परा का विरोध करते हुए, सियारामशरण गुप्त गाँधीवादी अहिंसा की प्रतिष्ठा करते

हैं। नाटक के अंत में नरखादक ब्रह्मदत्त का हृदय-परिवर्तन सिद्धान्त तो पूर्णतया गाँधीजी का अनुगमन है। अंत में ब्रह्मदत्त की स्वीकृति है: 'देव, मेरे जीवन की अमावस्या में आज सचमुच ही सोमवती के पुण्यपर्व का उदय हुआ है। आज में कृतार्थ हूँ। तर्क और बातें तो मैंने पहले भी सुनी थीं, परन्तु आज आपने अपने श्रद्धाचरण के अलौकिक प्रभाव से मेरी आँखें खोल दी हैं।' महाभारत और जातक कथा के संयोजन से पुण्य पर्व का कथानक निर्मित करते हुए सियारामशरण गुप्त गाँधीवादी दर्शन से परिचालित हैं। नाटक में दो प्रवृत्तियाँ टकराती हैं जिनका प्रतिनिधित्व सुतसोम और ब्रह्मदत्त करते हैं। अंत में सत की विजय होती है, गाँधीवादी ढंग से। यहाँ असत् विनष्ट नहीं होता, वह सत्य को स्वीकार कर लेता है। इस नाटक के संवाद सर्वाधिक विचारणीय हैं जिससे कवि की मूल्य-चिन्ता का परिचय मिलता है। सुतसोम मानव-मात्र की चिन्ता करते हुए कहता है: 'यदि तुम मुझ जैसे मनुष्य की बलि देकर अपने देवता की प्रसन्नता का विश्वास रखते हो, तो फिर उन अभागों को तुम्हें छोड़ देना चाहिए, जिन्हें तुम मेरे साथ बलि देना चाहते हो।'

'पुण्य-पर्व' एक उद्देश्य-विशेष को लेकर लिखा गया नाटक है और इसमें नाट्य-कौशल की अधिक खोज करना उचित नहीं होगा। यह एक प्रकार का सोद्देश्य, सप्रयोजन नाटक है जिसमें सत्य की विजय प्रतिपादित करना नाटककार का लक्ष्य है। गाँधीजी मानते हैं कि सत्य विजयी होता है, असत्य नहीं। नाटक का नायक सुतसोम गहरे आत्म-विश्वास से परिचालित है और त्याग कर सकता है: 'यदि मैं अपनी बलि देकर तुम्हारे अन्य बन्दियों की रक्षा कर सका, तो मेरे लिए सन्तोष की इससे बढ़कर और बात नहीं हो सकती।' उसे मृत्यु-भय नहीं है, वह उसके स्वागत के लिए तत्पर है। पशु-बलि, नर-बलि का विरोध करते हुए सियारामशरणजी अपने नाटक में गाँधीवादी अहिंसा की स्थापना करते हैं। इस दृष्टि से नाटक के अंत में सुतसोम के लंबे वक्तव्य जैसे गाँधी के कथन का रूपान्तरण हैं: मनुष्य का काम एक-दूसरे के सहयोग से चलता है, निरीहों पर दया करो; भीतर के अहंभाव को मिटाना होगा, निजी सुख-दुख से परे होना चाहिए, हिंसा-व्यापार त्याज्य है, सत्कार्य में लगो, निद्रा योगियों के वश में रहती है, पीड़ितों का दुःखमोचन करना चाहिए आदि।

सियारामशरण गुप्त की अन्य रचनाओं के रूप में उनके कुछ अनुवाद हैं जिनका चयन उन्होंने अपनी जीवन-दृष्टि के अनुरूप किया है। 'गीतासम्वाद' (१९४८) को स्वयं अनुवादक ने श्रीमद्भगवदगीता का समश्लोकी अनुवाद कहा है। 'निवेदन' भूमिका से ज्ञात होता है कि इसकी प्रेरणा महात्मा गाँधी और संत विनोबा हैं। दोनों महापुरुषों ने गीता का अनुवाद किया है जिसे सामाजिक स्वीकृति मिली है। यों बालगंगाधर तिलक की कर्मयोगी व्याख्या से लेकर गाँधी के अनासक्ति योग तथा अरविंद की

चेतना व्याख्या तक है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में गीता बलिपंथियों का प्रेरणाग्रंथ रहा है – आत्मा के अजर-अमर रूप के सहारे। जब आत्मा अविनश्वर है तो मृत्यु-भय कैसा? महाकवि निराला की पंक्ति हैः 'पश्चिम की उक्ति नहीं, गीता है गीता है।' द्वारकाप्रसाद मिश्र ने 'कृष्णायन' काव्य में गीता दर्शन का व्यापक उपयोग किया है। माखनलाल चतुर्वेदी के बलिपंथी भाव में भी गीता की छाया है। गीता एक बौद्धिक ग्रंथ है और उसके काव्यानुवाद का कार्य सरल नहीं, विशेषतया जब छन्द का भी आग्रह हो। पर इसके लिए सियारामशरणजी ने संस्कृत काव्य की रीति अपनाते हुए अतुकान्त का सहारा लिया है। वर्णनात्मक प्रसंगों में तो अधिक कठिनाई नहीं होती, पर क्योंकि भारत के बहुप्रचलित छंद अनुष्टुप को कवि ने स्वीकृति दी है, इसलिए उसे संग्रथन का विशेष ध्यान रखना पड़ा है। गीता के प्रसिद्ध श्लोकों में आत्मा की अमरता की स्थापना है –'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय' आदि। इसका अनुवाद हैः ज्यों छोड़ के वस्त्र फटे-पुराने, नये पुनः मानव धारता है/देही पुराने तनु त्याग त्यों/ही स्वीकारता है फिर से नयों को/काट पाते नहीं शस्त्र, जला पाता न अग्नि है/भिगो पाता, सुखा पाता इसे नीर न वायु भी/छिदता जलता एवं भीगता सूखता नहीं/यह नित्य जगद्व्यापी स्थिर निश्चल शाश्वत।

'हमारी प्रार्थना' (१९५२) विनोबा भावे के ईशोपनिषद के मराठी गद्यानुवाद का हिन्दी रूप है। विनोबाजी ने प्रार्थना के लिए यह मराठी अनुवाद किया था और उन्होंने हिन्दी अनुवाद के लिए सियारामशरण की सहायता की थी। इसमें जो प्रमुख विषय हैं वे उनकी विचारधारा के निकट हैं जैसे स्थितप्रज्ञ-लक्षण, सर्वधर्म स्मरण, नाम धुन आदि। इसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह, शरीरश्रम, अस्वाद, भय-वर्जन, सर्वधर्म समानत्व, स्वदेशी-भाव आदि 'एकादश व्रत' आते हैं जो गाँधी-दर्शन में भी स्वीकृत हैं।

'बुद्ध-वचन' (१९५६) 'धम्मपद' का अनुवाद है। सियारामशरणजी ने इसे बुद्धदेव की पच्चीसवीं जन्मशती के अवसर पर प्रस्तुत किया और स्वीकार किया है कि उन्होंने 'लाइट आफ़ एशिया' (अंग्रेज़ी) का सहारा लिया है। धम्मपद बौद्ध निकायों के लिए महत्वपूर्ण ग्रंथ है और यह एकाधिक भाषाओं में उपलब्ध है। आचार्य नरेन्द्रदेव और राहुल सांकृत्यायन जैसे मार्क्सवादियों ने बौद्धों के मान्य ग्रंथ के रूप में इसे स्वीकारा है। पालि धम्मपद में ४२३ छंद हैं जिन्हें २६ वर्गों में रक्खा गया है - यमकवग्गो से ब्राह्मणवग्गो तक। यह वास्तव में त्रिपिटक का एक अंश है और इसे उपदेश-संकलन कहा जाता है। माना गया है कि बुद्धदेव के निर्वाण के अनन्तर उनके शिष्यों ने इनका संचयन किया था। उपदेश संग्रह होने के कारण इसमें काव्यतत्व की खोज करना व्यर्थ होगा। जिस समय सियारामशरणजी ने धम्मपद का अनुवाद किया, उस समय उनके समक्ष अन्य अनुवाद भी रहे होंगे, इसमें संदेह नहीं। आचार्य

नरेन्द्रदेव ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'बौद्ध धर्म-दर्शन' में धम्मपद का प्रचुर उपयोग किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का अनुवाद बुद्धचरित नाम से है जिसे स्वतंत्र रूपान्तरण भी कहा जा सकता है। पालि-हिन्दी के कुछ शब्दों में ध्वनि-साम्य है जिनका उपयोग सियारामशरण ने किया है: अवनी यमलोक स्वर्ग का/विजयी जो वह व्यक्ति कौन है/उपदिष्ट प्रसून धर्म के/चुन ले जो पटु माल्यकार सा।

गीता-संवाद, हमारी प्रार्थना और बुद्धवचन अनुवाद ग्रंथ सियारामशरण की नैतिक दृष्टि के समीपी हैं जिसके निर्माण में गाँधी-दर्शन की प्रमुख भूमिका है। गीता, ईशोपनिषद और धम्मपद भारतीय चिन्तन के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं और विद्वानों ने इन पर विचार किया है। ये बौद्धिक-वैचारिक कृतित्ताँ हैं जहाँ उच्चतर मानव मूल्यों का विवेचन है। आधुनिक युग में इनके चिन्तन पक्ष की प्रासंगिकता स्वीकारी गई है। सियारामशरण जी के इन अनुवादों से काव्य-तत्व की अधिक आशा करना उचित नहीं होगा। इनमें भूल भाव को सामने लाने का प्रयत्न किया गया है।

# समापन

सियारामशरण गुप्त ने श्वास रोग के कष्ट के बावजूद कई दशकों की रचना-यात्रा की और उनका लेखन बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक से लेकर सातवें दशक तक फैला हुआ है। इस बीच भारतीय समाज में नयी सक्रियता आई और नवजागरण से लेकर जुझारू क्रांतिधर्मिता से होते हुए, उसने महात्मा गाँधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता प्राप्त की। इस सम्पूर्ण युग पर गाँधी के व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव है और रचनाकारों ने उसे अपने ढंग से ग्रहण किया है। स्वयं कवि के अग्रज राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय भावना के सर्वोपरि कवियों में हैं। पर सभी ने स्वीकारा है कि सियारामशरण गुप्त ने गांधी से प्रेरणा लेकर भी उनके दर्शन-चिन्तन को अपनी रचनाओं में अधिक स्थान दिया। डा. नगेन्द्र ने सियारामशरणजी को गाँधीवाद का भावात्मक व्याख्याता कहकर सम्बोधित किया है जिन्होंने उसके तात्विक पक्ष को अधिक ग्रहण किया। इस दृष्टि से सियारामशणजी ने आरंभिक दौर में कवि अग्रज मैथिलीशरण गुप्त से प्रेरणा ग्रहण करते हुए भी, क्रमशः अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण किया। मैथिलीशरणजी की रुचि प्रबन्धात्मकता में अधिक है और आख्यान काव्य उनका प्रमुख माध्यम है। पर सियारामशरण की मुख्य प्रवृति मुक्तक काव्य की है, कई बार गीतात्मक भी और कथा का सहारा लेकर भी वे वर्णनात्मकता में अधिक रुचि नहीं लेते। इसके स्थान पर वे भाव-व्यापार अथवा चिन्तन का प्रतिपादन कर किसी गन्तव्य पर पहुंचना चाहते हैं। जैसे 'आर्द्रा' काव्य में कथांशों के आधार पर कविताएं रची गई हैं, पर उनमें किसी आशय विशेष तक पहुंचने का प्रयत्न है। 'डाकू' में गाँधीजी का हृदय-परिवर्तन सिद्धान्त प्रतिफलित है। 'एक फूल की चाह' कवि नागार्जुन की हरिजन-गाथा जैसी है। 'अग्नि-परीक्षा' में साम्प्रदायिक सौमनस्य है। 'खादी की चादर' में नारी को सहानुभूति दी गई है। इस प्रकार कवि की राष्ट्रीय भावना और सामाजिक चेतना भावात्मक अभिव्यक्ति प्राप्त करती है। 'एक फूल की चाह' कविता प्रश्न छोड़ जाती है: कैदी कहते – 'अरे मूर्ख, क्यों ममता थी मन्दिर पर ही/पास वहीं मसजिद भी तो थी, दूर न था गिरजाघर भी।

सियारामशरण गुप्त की रचना के गाँधीवादी स्वरूप के संदर्भ में यह समझ लेना होगा कि रचनाशीलता में कोई भी दर्शन क्रमशः विलयित होता है। वह अनूदित होकर सर्जनशीलता में बाह्य आकार मात्र नहीं ग्रहण करता। यह एक प्रकार से

भाव-विचार की संवेदन-मैत्री होती है जिससे रचना नयी ऊर्जा प्राप्त करती है। कवि निराला में वेदान्त उनकी काव्य सम्पत्ति बनकर आया है-सम्पूर्ण संवेदन-संसार का अविभाज्य अंग। हम स्वीकार करते हैं कि सियारामशरण की रचना, विशेषतया काव्य में ऐसे स्थल हैं जिन्हें गाँधीवादी दर्शन का भाष्य कहा जा सकता है। पर अपने संवेदन जगत को विकसित करने के लिए उन्होंने गाँधीवादी दर्शन के उन प्रमुख बिंदुओं को अपनी रचनाशीलता में समाहित किया है, जिसे हम मानवीय संलग्नता अथवा उच्चतर मानवमूल्य की चिंता कहते हैं। गांधी दर्शन एक प्रकार से सर्वोत्तम भारतीय महात्मा एवं संतपरम्परा का आधुनिक संस्करण है जिसमें गीता का कर्मयोग, बौद्धों की अहिंसा–करुणा, जैनधर्म का अपरिग्रह, वैष्णवों की मानवीयता आदि आते हैं। सियारामशरण को गाँधी के सकर्मक निरभिमानी व्यक्तित्व ने बहुत प्रभावित किया। उन्होंने देखा कि इस व्यक्ति की कथनी-करनी, वाणी और आचरण में कोई फर्क नहीं है। 'राष्ट्रपिता' नामक पुस्तक में जवाहरलाल नेहरू के शब्द हैं: 'गाँधीजी की सबसे बड़ी शिक्षा थी कि चाहे कितनी भी कीमत देनी पड़े और जैसी भी स्थिति हो, हमें उन नैतिक सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए जिनमें जीवन सार्थक बनता है।'

सत्य-अहिंसा गाँधी-दर्शन के मूलाधार कहे जाते हैं, पर गाँधी ने इन्हें सही ढंग से परिभाषित किया, नया रूप दिया। सत्य उनके लिए एक ऐसा अविनश्वर जीवनमूल्य है जो मनुष्य को उच्चतम धरातल तक ले जाता है, ईश्वर से जोड़ता है। इस दृष्टि से वह ऐसी आध्यात्मिकता से समन्वित है जिसमें गहरी मानवीयता है। गाँधी का दृढ़ विश्वास कि सत्य पराजित नहीं होता और भारतीय महाकाव्यों में यह प्रतिष्ठित है। अहिंसा गाँधी का नैतिक अस्त्र है जिससे उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में विजय प्राप्त की। स्वयं गाँधीजी के शब्द हैं: 'मेरी अहिंसा में महान शक्ति है। इसमें कायरता या निर्बलता को स्थान नहीं।' वे अहिंसा को सच्ची वीरता का मानवीय लक्षण मानते हैं और इसी आधार पर उन्होंने असहयोग तथा सत्याग्रह आन्दोलन की कल्पना की। सियारामशरण गुप्त को सत्य-अहिंसा की नैतिकता बहुत प्रिय है और अपनी रचनाओं में वे उन्हें प्रतिपादित करते हैं। उन्होंने गाँधीदर्शन के इस मत को मानते हुए, उसे परम्परा से जोड़ा: 'बुद्ध से मिला परमार्थ-भाग/ईसा से नरानुराग/हिंसा त्याग धीर महावीर से वरद से/दृढ़ता मुहम्मद से।' यह सर्वधर्म समभाव का स्वरूप है। कवि सियारामशरण कहते हैं: 'हिंसानल से शान्त नहीं होता, हिंसानल/जो सबका है, वही हमारा भी है मंगल/मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर/हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर (उन्मुक्त)। गाँधी के सत्य-अहिंसा का पालन करते हुए सियारामशरण के पात्र सब कुछ सह लेते हैं, पर विद्रोह नहीं करते और प्रतिकार भाव तो उनमें आता ही नहीं। 'पुण्य-पर्व' नाटक का सुतसोम नरखादक ब्रह्मदत्त को अहिंसा का उपदेश देता है। 'नोआखाली' काव्य में गाँधी के अहिंसा-दर्शन की अभिव्यक्ति है और 'आत्मोत्सर्ग' में गणेशशंकर विद्यार्थी जातीय सौमनस्य के लिए अपने प्राणों का बलिदान करते हैं।

गाँधी का दर्शन, विशेषतया सत्य-अहिंसा वैष्णव साहित्य की लंबी परम्परा से जुड़ते हैं। गाँधी अपनी प्रार्थनाओं में नरसी मेहता का स्मरण करते हैं कि सच्चा वैष्णव वह है, जो पराई पीड़ा को जानता है। तुलसी के शब्दों में: परहित सरिस धरम नहिं भाई/पर पीड़ा सम नहिं अधमाई। करुणा-दया उच्चतम मानवीय भाव हैं, जिनकी सही सक्रियता में एक नई दीप्ति है। बौद्ध-जैन के करुणाभाव ने इसीलिए सियारामशरणजी को आकृष्ट किया। यहाँ तक कि उन्होंने ईसा के जीवन को केन्द्र में रखकर 'अमृत-पुत्र' काव्य की रचना की जिनके विषय में कवि की समापन पंक्ति है: कर्म में मुखरित तुम्हारे हैं वचन। गाँधी महात्माओं की इसी परम्परा में आते हैं। करुणा एक उच्च मानवीय गुण है जिसे बुद्धदेव ने चरितार्थ किया। संभवतः इसीलिए सियारामशरण गुप्त बुद्ध-वचन और गाँधी में साम्य देखते हैं। करुणा-दया सियारामशरण की रचनाशीलता के महत्त्वपूर्ण तत्व हैं जिन्हें वे कई प्रकार से व्यक्त करते हैं; पर यह करुणा उनकी समग्र जीवनदृष्टि से सम्बद्ध होकर रचना में आती है, अन्यथा वह केवल वक्तव्य बनकर रह जाती। सियारामशरण सामान्यजन को अपनी सहानुभूति देते हैं और काव्य में उसे संवेदन-धरातल पर व्यक्त करते हैं। इससे उनकी सजग सामाजिक चेतना का परिचय मिलता है। उनके पात्रों में सामान्यजन से आए हुए व्यक्तियों की पर्याप्त संख्या है और गाँधी के प्रिय हरिजन वर्ग को वे अपनी ममता देते हैं। जिसे 'दरिद्रनारायण' कहा गया, वह उनकी रचनाओं में मौजूद है। 'अंतिम आकांक्षा' उपन्यास में घरेलू नौकर रामलाल को प्रमुख भूमिका दी गई है जो निष्ठा से अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। 'दैनिकी' काव्य संकलन में दीन-हीन जन को स्वीकृति मिली है—बिरजू मजूर आदि को। नारी के प्रति सम्मान-भाव सियारामशरण की इसी मानवीय दृष्टि की उपज है। अपने उपन्यास का शीर्षक ही उन्होंने 'नारी' रखा जिसकी प्रमुख पात्र ग्रामीण जमुना है जो कई प्रकार के संघर्षों से गुजरती है।

सियारामशरण गुप्त में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति किस रूप में हुई, यह प्रश्न भी विचारणीय है। निश्चय ही यहाँ राष्ट्रीय काव्यधारा के अन्य प्रमुख कवियों की तरह भाव-प्रकाशन कई बार बहुत प्रत्यक्ष रूप से नहीं होता जैसा मैथिलीशरण गुप्त आदि में— सियारामशरण गुप्त में प्रतिक्रियएँ प्रायः भावात्मक स्तर पर होती हैं, माखनलाल चतुर्वेदी की तरह, यद्यपि दोनों के अभिव्यक्ति-शिल्प में अन्तर है। सियारामशरण राष्ट्र की मुक्ति का स्वप्न देखते हुए, एक ऐसे मूल्य-संसार की चिन्ता भी करते हैं, जहाँ कुछ निश्चित जीवन-प्रतिमान होंगे- प्रेम, दया, उदारता, सहिष्णुता आदि। इसीलिए वे गाँधीवादी दर्शन को अपनाते हैं और इस दृष्टि से उनकी रचनाओं में कुछ आदर्श-रेखाएं देखी जा सकती हैं। यथार्थ के संकेत भी उनमें आए हैं, विशेषतया ग्राम-समाज के, जो सामन्ती व्यवस्था से त्रस्त है और जिसे तरह-तरह के अंधविश्वास घेरे हुए हैं। उनकी रचनाओं में देशप्रेम का एक रूप ग्राम-जीवन, लोक

उपादान आदि में भी दिखाई देता है और इस दृष्टि से वे हमारे सबसे देशज विन्यास के कवियों में हैं, तथाकथित आधुनिकतावादी दबावों से दूर। उनकी रचनाओं में पुरागाथा का संसार आता है जिसे वे अपने समय-सन्दर्भ से जोड़ते हैं। 'पुण्य-पर्व' नाटक में बुद्धदेव-पूर्व कथा है जिसमें अहिंसा की विजय घोषित की गई है। 'गोपिका' आधुनिक समय का कृष्णकाव्य है। 'उन्मुक्त' में गुणधर के माध्यम से युद्ध का विरोध है। 'नकुल' का सबल मानवीय पक्ष है: 'सच्चे तुम तुम्हीं मृण्मयी वसुंधरा के/उसके निम्न नितान्त सर्वसाधारण जन सम। आचार्य नन्ददुलारे वाजेपयी ने रचना पर गाँधी युग के व्यापक प्रभाव की चर्चा करते हुए लिखा है कि 'आगामी महाकाव्य महात्मा गाँधी के भारतीय रंगमंच पर किए गए सांस्कृतिक प्रवर्तन का ही काव्यरूप होगा।' सियारामशरण ने राष्ट्रीय चेतना और गाँधी-दर्शन को अपनी कृतियों में प्रामाणिक अभिव्यक्ति दी। उन्होंने 'बापू' और 'नोआखाली' जैसे काव्यों की रचना की जिसमें गाँधी और उनके व्यक्तित्व की प्रत्यक्ष उपस्थिति है। बापू 'तीर्थसलिल' हैं 'क्षिति के गम्भीर गूढ़ अन्तस का, सहज विशुद्ध निष्कपट भाव/कर्कश-कठोर में सुरस का, तरल सलील शुचि प्रादुर्भाव/राशि-राशि पुण्य-वितरण का, बन्धन विमुक्त स्वच्छ हर्ष, लिए/ व्यापक अनन्त के चरण का, अमिट अटूट सुखस्पर्श किए।'

राष्ट्रीय भावना की संवेदन-स्तर पर स्वीकृति और उसे काव्यात्मक अभिव्यक्ति दे सकने का कार्य सारस्वत साधना की मांग करता है। इसके लिए वर्णन-विवरण का अतिक्रमण करना होता है। कुछ उदाहरण हैं: निराला का 'भारति जय विजय करे, जयशंकर प्रसाद का 'हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार, सुमित्रानंदन पंत का भारतमाता ग्रामवासिनी कविताएं, माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा' की पंक्तियां: मुझे तोड़ लेना वनमाली, इस पथ में देना तुम फेंक/मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जायें जिस पर वीर अनेक, रामधारीसिंह दिनकर की कविता मेरे नगपति मेरे विशाल तथा मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन,' सोहनलाल द्विवेदी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि की कविताएं। देश-प्रेम और राष्ट्रीय भावना की रेखाओं में रूप-रंग भरने का कार्य गहरे संवेदन के साथ शिल्प के उत्कर्ष का मांग करता है। जहाँ कहीं सियारामशरण को इस प्रयत्न में सफलता मिली हैं, वहाँ उनका काव्य नया सौन्दर्य प्राप्त कर सका है। राष्ट्रीय काव्यधारा में कई बार वक्तव्यों की प्रधानता हो गई क्योंकि रचना का लक्ष्य राजनीति से बहुत दूर नहीं था–भारतीय स्वतंत्रता का लक्ष्य। पर सियारामशरण ने उसे गाँधीवादी विचारधारा से समन्वित करके देखा। इससे उनकी रचना को एक वैचारिक-दार्शनिक आधार मिला, पर आदर्श-नैतिक दृष्टि ने उसकी सीमाएं भी निश्चित कर दीं। उसमें वह भावावेश और आक्रोश नहीं है जिसके लिए मैथिलीशरण गुप्त आदि राष्ट्रीय काव्यधारा के कवियों को स्मरण किया जाता है। इस दृष्टि से सियारामशरण गुप्त की राष्ट्रीय चेतना गाँधीवादी

प्रभाव में कुछ नैतिक मूल्यों पर अधिक ध्यान देती है और अपने कथन में संयमित है। इसीलिए कथा का आश्रय लेते हुए भी वे उसमें भाव-निष्पत्ति कराते हैं। 'आत्मोत्सर्ग' में गणेशशंकर विद्यार्थी के बलिदान के समय का दृश्य है: सहज सुरभि शुचिता थी उसमें, और एक था अपना रंग/फिर भी था पशु-बल-विहीन वह, कुसुम रूप ही कोमल अंग।

रचना में निरन्तर आत्मविस्तार उसे एक नयी ऊर्जा देता है और इसके लिए कई बार स्वयं की सीमाओं का अतिक्रमण करना होता है जो एक आत्मसजग-आत्मचेतस प्रयत्न है। यदि ऐसा न हो तो फिर या तो रचना निगति की ओर जाती है अथवा स्वयं को दुहराने लगती है। जहाँ तक सियारामशरण गुप्त का प्रश्न है, उनके अनुभव-संसार के अपने वृत्त हैं, उसकी अपनी सीमाएं हैं और संभवतः वे स्वयं भी इससे परिचित हैं। उनमें जो बाह्यसंसार आता है, वह इतना वस्तुगत नहीं होता कि रचना के रूप में वे पूर्ण तटस्थ रहें और आलेखकर्ता मात्र रह जायं। वे सब कुछ अपनी उस दृष्टि से देखते हैं जिसे वैष्णव-संस्कार, गाँधीवादी विचारधारा, भावात्मक प्रतिक्रिया आदि कहा जाता है। वे आत्मालोचन से न गुज़रे हों, पर उन्होंने आत्मविस्तार करते हुए अपने भाव-संसार को विकास दिया, इसमें संदेह नहीं। आरंभ की वैयक्तिक क्षति, चाहे वह पत्नी का निधन हो अथवा किसी परिवारी की मृत्यु, उन्हें वैयक्तिक स्तर पर अवसादग्रस्त करती है जैसे 'आर्द्रा' संकलन की 'प्रयाणोन्मुखी' कविता। पर कवि का सराहनीय पक्ष यह कि वह वैयक्तिक अवसाद को क्रमशः व्यापक जीवन प्रसंगों से जोड़ता है और अपनी करुणा सामान्यजन को देता है। एक स्तर पर यह कवि की आत्ममुक्ति का प्रयत्न है, दूसरी और कविता को आत्मविस्तार देने का उपक्रम। 'आंसू' के अंत में जयशंकर प्रसाद वेदना-दर्शन को नियोजित करते हैं और कहते हैं: फिर उन निराशा नयनों के, जिनके आंसू सूखे हैं/उस प्रलय दशा को देखा जो चिरवंचित भूखे हैं। निराला 'सरोज-स्मृति' जैसे शोकगीत में सामाजिक वैषम्य पर तीक्षण प्रहार करते हैं, नागार्जुन तथा हरिशंकर परसाई की तरह। सियारामशरण गुप्त का यह आत्मविस्तार उनकी रचना को एक पुष्ट मानवीय धरातल देता है, जिसे मुक्तिबोध ने व्यक्ति-संवेदन और समाज-संवेदन का संयोजन कहा है। इसीलिए हिन्दी स्वच्छन्दतावाद-छायावाद से प्रभावित होकर भी वे उसकी मूल धारा में सम्मिलित नहीं होते क्योंकि उन्होंने एक विशेष विचारधारा का वरण किया है और इसे उन्होंने अपनी चेतना में समाहित किया है।

सियारामशरण गुप्त की रचनाओं का मानवीय पक्ष इस दृष्टि से विचाराणीय है कि गांधीवाद से प्रेरणा लेते हुए भी, वे अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के निर्माण का प्रयत्न करते हैं। उनकी आरंभिक रचनाएं-मौर्य्य-विजय और अनाथ द्विवेदीयुगीन सुधारवादी दृष्टि से प्रेरित हैं। पर सियारामशरण गुप्त क्रमशः अधिक खुली भूमि पर आते हैं,

यद्यपि जीवन की मानसिक जटिलताओं में उनकी रुचि अपेक्षाकृत कम है। रचना का मानवीय पक्ष यथार्थ के कुछ संकेत तो करता है, पर कवि रूप में वे सदाशयता अथवा सदिच्छा का परिचय अधिक देते हैं कि यदि ऐसा हो सकता तो बेहतर था। सियारामशरणजी की कहानियाँ उस दौर में रची गईं जब स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व महात्मा गाँधी ने संभाल लिया था। यहाँ सामान्यजन की उपस्थिति है : घुटनों तक धोती के ऊपर मिर्जई, बायें कन्धे पर मैली पिथोरी (रुपये की समाधि) ; यह है देवी कारीगर का रेखांकन। पर जीवन संघर्ष से गुजरते हुए भी अधिकांश पात्र आदर्शवादी हैं; वे बलिदान के लिए तत्पर हैं और सम्पूर्ण विद्रोह उनसे दूर है। कहानियाँ एक नैतिक समापन प्राप्त करती हैं और कहानीकार की सदिच्छा व्यक्त करती हैं। 'गोद' और 'नारी' उपन्यास में यथार्थ का चित्रण है, विशेषतया ग्राम-समाज की स्थितियों का, पर कथाकार की नैतिक दृष्टि यहाँ भी सक्रिय है। 'नारी' की जमुना भारतीय नारी की प्रतिनिधि बनती है। सियारामशरण की रचना का मानवीय पक्ष आदर्श और नैतिक आग्रहों पर बल देता है, वह सात्विकता की ओर अधिक उन्मुख है। 'गोपिका' काव्य नाटक में कृष्णकथा का आश्रय लेते हुए उन्हें पूरा अवसर था कि वे उसे श्रृंगार का सम्पूर्ण ताप देते, पर यहाँ भी वे उद्देश्य-परिचालित हैं: 'संचय के साथ-साथ त्याग का उपार्जन करो सप्रेम/निस्सन्ताप जूझना है पक्ष-प्रतिपक्ष के समस्त दुर्जयों से/सभी क्रूरों से, विजय समग्र पाओ – तब तक।

सियारामशरण गुप्त को भारतीय संस्कृति से सम्बद्ध करके देखा गया है, पर इसके स्वरूप की पहचान होनी चाहिए क्योंकि भारतीयता की कट्टरपंथी व्याख्या से लेकर उसकी सामाजिक प्रवृत्ति तक है। भारतीयता में अनेक विजातीय तत्व इस प्रकार विलयित हो गए हैं कि उनकी पृथक पहचान कठिन। ऐसे में भारतीयता का एक सम्मिलित रूप है जिसमें कई योगदान हैं। भारतीय नवजागरण के साथ जब भारतीयता की पुनर्व्याख्या का कार्य आरम्भ हुआ तब नेतृत्व के समक्ष समन्वित संस्कृति की भावना मौजूद थी। स्वयं महात्मा गाँधी इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं जिन्होंने सर्वधर्म समभाव, सर्वोदय पर बल दिया-ईश्वर, अल्ला तेरे नाम सबको सन्मति दे भगवान। उसके साथ भारतीय ग्राम-समाज, कृषक-जन उपस्थित हैं जो जातीय सौमनस्य के उदाहरण हैं। सियारामशरण की भारतीयता अजमेरीजी को आदरणीय मानती है जो इस्लाम में दीक्षित होकर भी वैष्णव थे। सियारामशरण की भारतीयता में उसका सांस्कृतिक-नैतिक पक्ष सर्वाधिक उजागर हुआ है और इस माध्यम से वे एक नव आध्यात्म की संरचना करने का प्रयत्न करते हैं, मानों स्वामी विवेकानंद से प्रेरणा लेते हुए। उनकी रचनाएं आधुनिक नागरिक दबावों से मुक्त हैं और वे परिचित लोकजीवन की भूमि का सहज-सरल ढंग से उपयोग करते हैं, कवि भवानी मिश्र की तरह। उनकी रचना के देशज संस्कार उन्हें लोक उपादानों की ओर ले जाते हैं और गंवई

गाँव का मुहावरा उनमें प्रवेश पाता है, विशेषतया गद्य कृतियों में वह अधिक मुखर है। अपने विन्यास से लेकर चिन्तन-व्यवहार, रचना-कर्म तक वे भारतीयता का सही सामाजिक प्रतिनिधित्व करते हैं। उनमें भारतीय संस्कृति के जीवन्त तत्त्व देखे जा सकते हैं, पर वे संकीर्णताओं को क्षमा नहीं करते। उनकी भारतीयता में पौराणिक प्रसंगों की नयी व्याख्या से लेकर सांस्कृतिक सौमनस्य और सर्वोदय भावना तक का प्रवेश हुआ है। यह भारतीय दृष्टि कवि की व्यापक मानवीयता से सम्बद्ध होकर रचना में स्थान पाती है और इस दृष्टि से उनका चिन्तन पक्ष उदार है।

सियारामशरण गुप्त की रचनाओं में एक सहजता है और कहा जा सकता है कि कथ्य के माध्यम से अपने अभीप्सित आशय को व्यक्त करना उनका मुख्य उद्देश्य है, जिसे उनकी रचना का नैतिक मानवीय पक्ष भी कहा जाता है। वे रचना के अभिव्यक्ति-कौशल, कला-शिल्प की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दे सके हैं। वर्णनात्मकता से मुक्ति पाने के लिए वे मुक्तक काव्य की ओर आए और चिन्तन-दर्शन का भी सहारा लिया। उन पर छायावादी प्रभाव भी हैं, विशेषतया गीतात्मक प्रवृत्तियों में। उन्होंने 'बापू' के लिए लंबे संबोधन-गीत की रचना की है: 'आई अहा मूर्ति वह हँसती, जैसे एक पुण्य रश्मि स्वर्ग से उतर के/अन्ध तमःपुंज छिन्न करके, दीख पड़ी अन्तस के अन्तस में धंसती। 'गीतों' के माध्यम से सियारामशरण ने भाव और चिन्तन को अभिव्यक्ति देते हुए, भाषा को भी संवारा है क्योंकि गीत संग्रथित भाषा की मांग करते हैं। उल्लेखनीय यह कि सियारामशरण की गीतात्मकता में वैयक्तिक भावनाओं के साथ सामाजिक स्थिति और चिन्तन का प्रवेश भी हुआ है, जिसे गीतों का विस्तार कहना उचित होगा। कहा जाता है कि महाकवि निराला के गीतों में जितना वैविध्य है, उतना अन्यत्र नहीं। सियारामशरण अपने काव्य को ऊर्जा देने के लिए लोक उपादनों के साथ प्रकृति का उपयोग करते हैं जिससे उन्हें दृश्य-विधान, प्रतीक-बिम्ब भी प्राप्त होते हैं। प्रकृति उनकी रचना को समृद्ध बनाती है। 'दूर्वादल' की 'वर्ष-प्रयाण' कविता में ऋतु वृत्त के दृश्य हैं: शीतमय गहन का वह शीत/शिशिरमय रवि भी हुआ प्रतीत/ठिठुर कर थमकर लेकर सांस/ गई जब निखिल निशाएं भीत/लगी पर तुम्हें न हिम की सांस। प्रकृति गद्य कृतियों में भी मौजूद है और कविताओं में वे उसका उपयोग प्रतीक-बिम्ब रूप में करते हैं। बापू का आगमनः छूटकर काल निशाकारा से, मेघ-जाल भेदकर प्रातरश्मि बिखरी/श्यामोज्जवल शान्त दीप्त-धारा से श्यामल धरित्री अहा निखरी। अथवा 'वीणा' को सम्बोधित पंक्तियां: कोई मुग्धा तापस बाला/मानों उत्फुल्ल सुमन माला/निज कर-कंजों से कच संभाल/जल देती थी तेरे तल में/ प्रतिदिन प्रभात के कल-कल में। इस पूरी कविता में प्रतीक-बिम्ब प्रकृति से प्राप्त किए गए हैं। 'गोपिका' में भी प्रकृति का प्रचुर उपयोग है और उसका परिवेश सांस्कृतिक।

जिस समय सियारामशरणजी काव्य-रचना कर रहे थे, उस समय एक ओर पुराने छंदों को नया रूप देने का प्रयत्न था, दूसरी ओर निराला द्वारा मुक्तछन्द की घोषणा। सियारामशरण ने प्रायः मात्रिक छंदों का उपयोग किया-अनुष्टुप, छप्पय, रोला आदि, पर उन्होंने सर्वाधिक स्वीकृति दी मुक्तछन्द को। उन्होंने प्रत्यन किया कि इसमें लय का निर्वाह हो और जहां ऐसा संभव हो सका, कविता प्रभावी है। वास्तविकता यह कि वे शिल्प के प्रति इतने सजग नहीं, जितना संवेदन के प्रति। इसीलिए उनका संवेदन-संसार अपने अनुरूप शिल्प की तलाश कर लेता है। सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने कहानी, उपन्यास का माध्यम अपनाया और अपनी निजता के लिए निबंधों का। पर उनका मूल माध्यम कविता ही है जहाँ वे पूरी उठान लेने का प्रयत्न करते हैं और अपने मनोवांछित आशय तक पहुँचना चाहते हैं। प्रायः ये बातें सहज भाषा में कही गई हैं, पर जहाँ संस्कृतनिष्ठ सामासिक पदावली का प्रयोग हुआ है, वहाँ संग्रथन तो आया है, किन्तु अर्थ तक पहुँचने की कठिनाई भी। सियारामशरण गुप्त ने स्वयं के रचनाकार व्यक्तित्व को निरन्तर विकसित करने का प्रयत्न किया और वे प्रौढ़ता के बिन्दु तक पहुंचने में सफल हुए। यहां उनकी रचनाएं, विशेषतया उनका काव्य भाव और चिन्तन के संयोजन में समर्थ है। 'गोपिका' जो उनका अन्तिम काव्य है, शिल्प-कला में छायावाद के समीप है, पर कवि अपने चिन्तन में स्वतंत्रः यह नव प्रभात, यह नव प्रभात/वह गई, गई वह, गई रात/इस ओर पीठ कर इन्दुमुखी, जूड़ा था जिसका तिमिर-बन्ध/खिसकाती दिनमणि पुष्प गई, फैला जिसका यह प्रभा-गन्ध/पुलके-पुलके तरु पात-पात।

गाँधी ने आधुनिक भारतीय समाज को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता ही नहीं दिलाई, वरन उच्चतर मानव मूल्यों की चिन्ता भी की और उन्हें अपने आचरण से विश्वसनीयता दी। इस दृष्टि से उनका सार्वभौम रूप है, चिन्तन के धरातल परः सत्य, अहिंसा, प्रेम, मैत्री, शुचिता आदि। आधुनिक हिन्दी रचनाशीलता पर उनका प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रभाव देखा जा सकता है, पर जहाँ तक गाँधी-दर्शन के समग्र प्रतिफलन का प्रश्न है, निर्विवाद है कि सियारामशरण गुप्त उसके सर्वाधिक प्रतिनिधि हस्ताक्षर हैं।

## सियारामशरण गुप्त की रचनाएँ

**काव्य :** मौर्य्य-विजय, अनाथ, दूर्वादल, विषाद, आर्द्रा, आत्मोसर्ग, पाथेय, मृण्मयी, बापू, दैनिकी, नकुल, नोआखाली, जयहिन्द, सुनन्दा, अमृतपुत्र, अनुरूपा; **काव्य-नाटक :** उन्मुक्त, गोपिका; **उपन्यास :** गोद, अन्तिम आकांक्षा, नारी; **कहानी-संकलन :** मानुषी; **गद्य-नाटक :** पुण्य-पर्व; **निबन्ध :** झूठ-सच; **अनुवाद :** गीता-संवाद, हमारी प्रार्थना, बुद्ध-वचन; **समग्र :** सियारामशरण गुप्त रचनावली।

**सहायक पुस्तकें :** नगेन्द्र (सं.) : सियारामशरण गुप्त; शिवप्रसाद मिश्र : सियारामशरण गुप्तः व्यक्तित्व और कृतित्व; ललित शुक्ल : सियारामशरण गुप्त : सृजन और मूल्यांकन; कमलाकान्त पाठक : मैथिलीशरण गुप्त : व्यक्ति और काव्य।

*सियारामशरण गुप्त* (1895-1968) गाँधी युग की उपज हैं। विपुल रचना-यात्रा करते हुए उन्होंने स्वयं को सर्जन की कई विधाओं में अभिव्यक्ति दी—कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, अनुवाद आदि, पर उनका व्यक्तित्व मुख्य रूप से कवि का है, जयशंकर प्रसाद की तरह। अपने यशस्वी कवि-अग्रज राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की स्नेह-छाया में कार्य करते हुए भी उन्होंने अपने स्वतंत्र रचना-क्षेत्र का निर्माण किया।

सियारामशरण गुप्त को 'गाँधीवाद का सर्वोपरि व्याख्याता' कहकर सम्बोधित किया जाता है। गाँधी-दर्शन को अपनाते हुए वे राष्ट्र की मुक्ति का स्वप्न देखने के साथ ही एक ऐसे मूल्य-संसार की चिन्ता भी करते हैं, जहाँ कुछ निश्चित जीवन-प्रतिमान होंगे : सत्य, अहिंसा, उदारता, प्रेम, सहिष्णुता आदि। आदर्शवाद के साथ उनमें यथार्थ के संकेत भी मिलते हैं, विशेषतया ग्राम-समाज के, जो सामन्ती-व्यवस्था से त्रस्त हैं। उनकी रचनाओं में देश-प्रेम का सघन रूप ग्राम-जीवन, लोक उपादान आदि में भी दिखायी देता है और इस दृष्टि से वे हमारे देशज विन्यास के कवियों की पंक्ति में अग्रणी हैं।

इस विनिबंध के लेखक **प्रेमशंकर** ने सियारामशरण गुप्त की रचना के साथ अन्तरंग यात्रा की है और वे उनके सर्जक व्यक्तित्व को सम्यक् साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में उजागर करने में सफल हुए हैं।

**पन्द्रह रुपये**